मीरां बावरी

वीरेन्द्र मोहन रतूड़ी

उमेश प्रकाशन ५, नाथ मार्केट, नई सड़्क, दिल्ली-६

मीरां बावरी

किशोर-उपन्यास-माला क्रम : १२

वीरेन्द्र मोहन रतूड़ी

उमेश प्रकाशन

५, नाथ मार्केट, नई सड्क, दिल्ली-६

© उमेश प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक ● उमेश प्रकाशन,
५, नाथ मार्केट, नई सड्क, दिल्ली-६
मुद्रक ● इन्द्रप्रस्थ प्रेस,
रामनगर, नई दिल्ली
संस्करण ● प्रथम
(१९६२)
मुल्य ● दो रुपये

प्रकाशक की ओर से

किशोरों का मनोरंजन भी करे, साथ-साथ उनके ज्ञान में वृद्धि भी करे, ऐसे साहित्य के प्रकाशन का उद्देश्य लेकर, इस किशोर- उपन्यास-माला का श्रारम्भ किया गया है।

हिन्दी में किशोरों के लिए इस प्रकार के साहित्य का श्रभाव-सा ही है।

'मीरां बावरी' उपन्यास इस किशोर- साहित्य के श्रभाव की पूति में एक विशेष प्रयास है। बाल एवं किशोरों द्वारा जिस चाव से इस माला का स्वागत हुआ है, उससे प्रेरित होकर भविष्य में भी नए-नए प्रेरणा- दायक और नई-नई रोचक सामग्री को श्राकर्षक ढंग से देते रहने में हम सदैव प्रयत्नशील रहेंगे।

किशोरोपयोगी उपन्यास

पूपू : समुद्री प्राणियों के अद्भुत जीवन पर आधारित

गौतम बुद्ध : महात्मा बुद्ध के जीवन पर आधारित

जय भवानी : शिवाजी के जीवन पर आधारित

बाजीराव पेशवा : बाजीराव पेशवा के जीवन पर आधारित

सम्राट् शिलादित्य : एक ऐतिहासिक गाथा पर आधारित

चित्तौड्गढ़ की रानी : रानी पद्मिनी के जीवन पर आधारित

गढ़मण्डल को रानी : रानी दुर्गावती के जीवन पर आधारित

रूपा और लल्ली : चींटियों के अद्भुत जीवन पर आधारित

बाघ का शिकार : बाघ के शिकार पर आधारित एक साहसिक गाथा

खूब लड़ी मर्दानी : महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन पर आधारित

सम्राट् अशोक : सम्राट् अशोक के जीवन पर आधारित

मीरां बावरी : मीरांबाई के जीवन पर आधारित

हल्दी घाटी : राणा प्रताप के जीवन पर आधारित

किशोरोपयोगी कहानियाँ

भारत के साहसी वीरों की गाथाएँ : वीर रस से पूर्ण भारतीय कहानियाँ

देश-देश की परियाँ भारत आईं : संसार की रोचक लोक-कथाओं का संग्रह

रंग-बिरंगी परियाँ : चुनी हुई रोचक लोक कथाओं का संग्रह

प्रस्तावना

साहित्य के अनेक रूप-प्रकारों में उपन्यास का अपना विशिष्ठ स्थान है। इसका कारण यह है कि उपन्यास की कथा-धारा और भाव- तरंग में पाठक का मन कुछ ऐसा रम जाता है कि पाठक और उपन्यास के बीच कोई व्यवधान नहीं रह जाता।

ऐतिहासिक व्यक्तियों के सम्बन्ध में जब आज का कथाकार अपने लघु-उपन्यास को लिखता है तो पाठक और ऐतिहासिक व्यक्ति के वीच सान्निध्य की भावना और भी दृढ़ और आत्मीय हो जाती है। इसलिए प्रस्तुत साहित्य प्रयास का अभिनन्दन और स्वागत होना चाहिए कि मीरां के उज्ज्वल भक्ति-प्रवण और भावप्रधान चरित्र को आत्मसात करने में इस उपन्यास के द्वारा हमें बड़ी सहायता मिलेगी।

मरु मन्दाकिनी मीरां को उनके काव्य के द्वारा सभी हिन्दी भाषी भली-भांति जानते हैं। अब उन्हें मीरां से और अधिक निकट का आत्मीय नाता जोड़ने में सहायता मिलेगी। यह बात मैं साहित्य के पण्डितों और विशेषज्ञों को ध्यान में रख कर नहीं कह रहा हूँ। मेरा आशय नए भारत के नए नागरिकों से है। भारत के भावी नागरिक भी मीरां जैसी विशिष्ठ भारतीय आत्मा को अधिक सुगमता के साथ आत्मसात कर सकेंगे। उन्हें यह प्रतीत होगा कि वे मीरां को और अधिक निकट से देख रहे हैं, उस युग में जी रहे हैं, जिसने मीरां को जन्म दिया और देश के उस अंचल की छाया में बैठे हैं, जिसे मीरां ने अपने आँसुओं से भिगोया था।

इस उपन्यास की शैली सुबोध, सरल और लोकप्रिय सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। मैं लेखक के प्रति अपनी शुभेच्छाएं अर्पित करते हुए पाठकों से यह निवेदन भी करना चाहता हूँ कि वे "मीरां बावरी" और ऐसे ही अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों को अपना कर लेखक और प्रकाशक को प्रोत्साहित करें।

- नरेन्द्र शर्मा

आकाशवाणी भवन,

नई दिल्ली

१

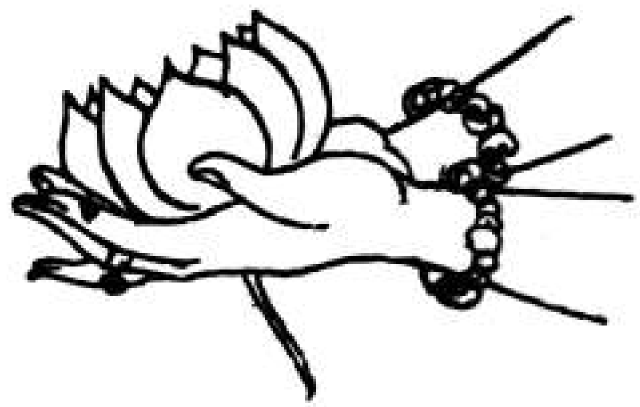

"मीरां, ओ मीरां !" राव दूदा जी जौहरी का लाया हुआ नौरतन हार हाथ में लिए मीरां के कमरे की ओर बढ़े। मीरां के कमरे के निकट पहुँचने पर उन्हें घुंघरुओं की ध्वनि सुनाई पडी। दूदा जी का हृदय द्रवित हो उठा। वृद्ध मुख पर छाया क्षात्र तेज स्नेहिल शान्ति में परिवर्तित हो गया।

"पगली कहीं की," वे मन ही मन प्यार भरे स्वर में बोले, "भला इस तरह भी कोई रात-दिन भगवान में खोया रहता है ? इसे तो राजरानी बनना है, लेकिन यह है कि हर समय गिरधर गोपाल की ही रट लगाए रहती है।"

यह विचार आते ही राव दूदा जी के चेहरे पर नाचती शान्ति कठोरता में परिर्वार्तत हो उठी। उन्होंने अपने हाथ का नौरतन हार देखा और कुछ गम्भीर होकर मीरां के कमरे की ओर बढ़े।

"ग्राज मैं उसे अवश्य टोकूंगा," दूदा जी सोचने लगे, "वैष्णव तो मैं भी हूँ। मैं भी सुबह-शाम पूजा-अर्चना करता हूँ।... पर इस तरह आठों पहर खोए रहना, और वह भी एक मेङतिनी राज-

कुमारी का, जिसे महारानी बनना है। नहीं, यह ठीक नहीं है। आज मैं उससे अवश्य कहूँगा कि वह राज-रानियों के योग्य अन्य बातें भी सीखे।"

सोचते-सोचते राव दूदा जी मीरां के कमरे के दरवाजे पर पहुँच गए। उनके चेहरे पर कठोरता के भाव स्पष्ट झलक रहे थे। स्पष्ट था कि वे क्रोधित हैं।

उन्होंने दरवाजे से ही अन्दर झाँक कर देखा। कमरे के एक कोने में फूलों के तोरणों के बीच रत्नजटित छोटे से सिंहासन पर गिरधर गोपाल की मूर्ति विराजमान है और उसके सामने मीरां घुंघरू बांधे तन्मय होकर नाचती हुई गा रही है "पग घुँघरू बांध मीरां नाची रे..नाची रे नाची रे।" पास ही बैठी उसकी सेविका ललिता दत्तचित्त होकर इकतारा बजा रही है। उसका सिर एक ओर झुक कर इकतारे के ऊपरी भाग पर टिका हुआ है। दूदा जी को लगा जैसे दूज के चाँद सी सुकुमार, कोई बाल- परी श्वेत परिधान पहने बाल-हंसिनी सी घुंघरुओं और इकतारे की स्वरलहरियों में संतरण कर रही हो। मानो किसी मंगलमय, अलौकिक अनुभूति ने सशरीर आकर पूजागीत छेङ दिया हो, जिसने समस्त वातावरण को पवित्र कर दिया है।

दूदा जी ठगे से खङे रह गए। उनके हाथ का नौरतन हार हाथ में ही रह गया। वे मन्त्रमुग्ध हो अपलक नयनों से देखते रह गए। उनके हृदय से स्नेह और ममत्व से पूर्ण अक्षय वात्सल्य धारा फूट निकली; नयनों में सजल घटाएं उमङ पङीं; सम्पूर्ण मन एक अव्यक्त सात्विकता और भक्तिभाव से भर उठा। सजल नयन मुँद गए और हाथ शिथिल होने से हार नीचे गिर पङा।

'खट' की ध्वनि सुन सेविका ललिता चौंकी। उसने पलट

कर दरवाजे की ओर देखा और दूदा जी पर दृष्टि पड्ते ही घूंघट खींच लिया।

इकतारे का तारतम्य टूटने से मीरां के पद-संचालन में व्या- घात पड़ा। उसके थिरकते नन्हे पांव ठिठक कर रुक गये। उसे सामने दरवाजे पर राव दूदा जी खडे दिखाई दिए। वह "बाबा ! बाबा !!" कहती हुई उनकी ओर भागी। दूदा जी ने उसे छाती से चिपटा लिया। जो आंसू उमङ कर आंखों की कोरों पर टिके थे, वे अब गालों से बह कर मीरां के बालों को भिगोने लगे।

कुछ क्षण इसी प्रकार की अव्यक्त आनन्दानुभूति में बीत गए। सहसा दूदा जी को जैसे कुछ स्मरण हो आया। उन्होंने अपना हाथ देखा और फिर धरती की श्रोर। धरती पर पड़ा हार देख कर उन्होंने उसे उठा लिया और प्यार भरे स्वर में मीरां से बोले, "अरी बावरी! देख तो आज तेरे लिए क्या लाया हूं।"

मीरां ने आंखें उठा कर देखा। हार देखते ही उसने बाल- सुलभ उत्सुकता से उसे ले लिया। नवरत्नों की सतरंगी आभा से उसके नयन दीप्त हो उठे। उसने बच्चों की तरह उछल कर उसे छाती से लगा लिया। पैरों के घुँघरू फिर भंकृत हो उठे।

"तुझे यह हार पसन्द आया, बेटी ?" दूदा जी ने पूछा। "हां, बाबा ! बहुत !" मीरां ने हार को उसी तरह छाती से चिपटाए उत्तर दिया।

फिर उसने दोनों हाथों से हार को ऊंचा करके देखा और खुश होकर बोली, "देखो ना बाबा ! इसके एक-एक दाने से कसे-कैसे रंग फूट रहे है ! मेरे गिरधर गोपाल को यह बहुत फबेगा, बहुत !"

यह कह कर वह गिरधर गोपाल की मूर्ति की ओर दौड़ी और हार मूर्ति के गले में पहना दिया। फिर कुछ दूर हट कर उसने निरीक्षक की सी दृष्टि से देखा और फिर एकदम ताली बजाती हुई दूदा जी की ओर मुड़ कर बोली, "देखा, न, बाबा ! कितना सुन्दर लग रहा है यह हार, मेरे गिरधर गोपाल के गले में !"

दूदा जी कुछ क्षण स्तब्ध से रह गए। उनकी आंखें फिर सजल हो उठीं। वे उत्तर दिए बिना ही चुपचाप अपने कमरे की ओर लौट गए।

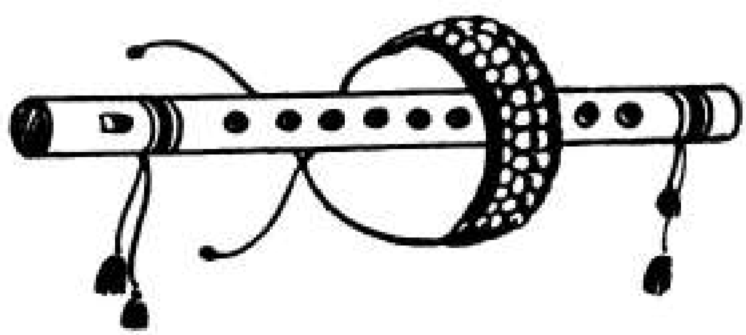

२

राव दूदा जी अपने युग के महापराक्रमी योद्धा थे और साथ ही भगवान् कृष्ण के परम भक्त भी। उन्होंने मेड़ता जीत कर उसे नए सिरे से बसाया और फिर वहीं रहने लगे। उनके पाँच पुत्र और एक पुत्री थी।

राव दूदा जी ने अपने चौथे पुत्र राव रत्नसिंह को गुजारे के लिए कुड़की आदि बारह गाँव दे दिए थे। इसलिए राव रत्न- सिह कुड़की में ही रहने लगे। वहीं सम्वत् १५६० में मीरां का जन्म हुआ।

जब मीरां केवल तीन वर्ष की थी, तभी दुर्भाग्यवश उसकी माता की मृत्यु हो गई। मातृविहीन नन्ही मीरां को राजकुमा- रियों की तरह पालना शोक-विह्वल राव रत्नसिंह के वश का न था। श्रतः राव दूदा जी ने मीरां को मेड़ते बुला लिया और वहीं उसका लालन-पालन करने लगे। दूदा जी के लाड़-प्यार में मानों मीरां को अपनी खोई माँ मिल गई। दूदा जी ने अपने महल के निकट ही चतुर्भुज जी का मन्दिर बनवाया था। सुबह-शाम वे मीरां की उंगली पकड़कर मन्दिर में जाते और पूजा- करते। चतुर्भुज जी के मन्दिर की घण्टियों की मधुर ध्वनियों से मीरां के मन में पूजा और धार्मिक भाव की जड़ें गहरी होने

लगीं। वैष्णव जन और साधूगण दूदा जी के महल में आते और भजन-कीर्तन करते। दूदा जी उनका आदर-सत्कार करते। मीरां पर उन सब के संस्कार पड़ते जा रहे थे।

इसी तरह चार वर्ष बीत गए और मीरां सात वर्ष की हो गई।

एक दिन भक्त रायदास जी मेड़ते पधारे। राव दूदा जी और मीरां ने उनका स्वागत-सत्कार किया और आदर से अपने अतिथिगृह में टिकाया।

रात को मीरां गिलास में दूध लेकर भक्त रायदास जी को देने के लिए अतिथिगृह में गई। बाहर से ही उसने देखा कि रायदास जी ने अपने झोले से एक छोटी-सी चौकी निकाली, उसे पोंछा और फिर झोली से एक मूर्ति निकाल कर उसके ऊपर रख दी। उन्होंने मूति के सामने मस्तक झुका कर प्रणाम

किया ही था कि मीरां अन्दर पहुँच गई। "स्वामी जी ! यह किसकी मूर्ति है?" उसने बाल सुलभ उत्सुकता से

"स्वामियों के स्वामी, भक्तवत्सल गिरिधर गोपाल जी की," रायदास जी ने मूर्ति के आगे नतमस्तक हो श्रद्धा से कहा।

"यह तो कृष्ण जी लगते हैं।" मीरां ने कहा। "हाँ बेटी ! ये कृष्ण भी हैं, गिरिधर गोपाल भी, नटवर-

नागर भी, मनमोहन, मुरलीधर, घनश्याम, राधारमण, द्वारिका नाथ, पीताम्बरधारी, गोपीवल्लभ, नन्दलाल सब कुछ। त्रिलोक के स्वामी ये ही हैं और हम सब पापियों के तारनहार भी।" राय- दास जी ने यह कह कर मूर्ति के आगे फिर सिर झुका दिया।

मीरां को लगा, जैसे बह कोई चिरपरिचित शब्द सुन रही हो। उसने मूर्ति की ओर फिर देखा तो वह मन-प्राण से उसकी ओर आकर्षित हो गई।

"अच्छा स्वामी जी ! यह आपके लिए दूध है।" उसने कहा और स्वामी जी को गिलास देकर वापस लौट गई।

कुछ दूर चल कर उसने मुड़ कर देखा। उसने देखा कि रायदास जी दूध का गिलास एक ओर रख कर मूर्ति के आगे सन्द-मन्द नृत्य कर रहे हैं। मीरां के बढ़ते पाँव ठिठक कर रह गए। कुछ देर तक एक-टक गिरिधर गोपाल की उस मूर्ति और नाचते हुए स्वामी जी को देखती रही और फिर अपने कमरे में चली गई।

पलंग पर लेटने के बाद भी बहुत देर तक उसकी आँखों के सामने वही दृश्य नाचता रहा; कानों में रायदास जी के वही शब्द गूंजते रहे गिरिधर गोपाल, नटवरनागर।' फिर अर्ध रात्रि के बाद धीरे-धीरे उसकी पलकें भारी होने लगीं और वह सो गई।

स्वप्न में उसने देखा कि अतिथिगृह में मूर्ति के चारों ओर एक तेज प्रकाश फैला हुआ है और वह प्राणवान हो गई है, उसके चेहरे पर मुस्कान है और वह हाथ के इशारे से मीरां को बुला रही है। मीरां उसकी ओर स्वतः खिंची चली गई और उसके पैरों पर उसने सिर टेक दिया।

मूर्ति ने मीरा के सिर पर प्यार से हाथ रखा और गहन-गम्भीर परन्तु मृदुल वाणी में बोली, "मीरां !"

"मेरे प्रभो !" मीरा ने गद्गद् कण्ठ से कहा और मूर्ति की ओर देखा।

मूर्ति मुस्कराई। मीरां भाव-विभोर हो उठी। मूर्ति ने अपनी दोनों बाँहें फैला दीं।

लेकिन तभी चतुर्भुज जी के मन्दिर की घण्टियाँ जोर से बज उठीं। मीरां की नींद टूट गई। वह शोक-विह्वल हो अपने पलंग से उतर कर बाहर दौड़ी।

बाहर उसने देखा कि पौ फटने वाली है और भक्त रायदास जी चतुर्भुज जी के मन्दिर से पूजा करके अतिथिगृह में लौट रहे हैं। मीरां "स्वामी जी, स्वामी जी" कहती हुई उनकी ओर दौड पडी।

रायदास जी रुक गए, उन्होंने उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए पूछा, "क्या बात है, बेटी ?"

"स्वामी जी, वह मूर्ति मुझे दे दीजिए। वे मेरे गिरिवर गोपाल हैं. मेरे कृष्ण-कन्हैया, मेरे गोपीवल्लभ !"

"नहीं बेटी, मैं वह मूर्त्ति तुम्हें नहीं दे सकता। मेरे भी वे गिरिधर गोपाल हैं। उनके बिना मेरा जीवन निस्सार है।" रायदास जी ने कहा और अतिथिगृह की ओर बढ़ गए ।

मीरां उनके पीछे-पीछे भागी। पर रायदास जी ने जल्दी- जल्दी वह मूर्ति और चौकी झोली में डाली और शीघ्रता से कदम बढ़ाते हुए अपनी राह चले गए ।

मीरां "स्वामी जी, स्वामी जी" कहती हुई वहीं पर पछाड खाकर गिर पडी ।

तब तक नौकर-चाकर भी जाग गए थे। उन्होंने मीरां को वहां पडा हुआ देखकर उसकी सेविका ललिता को सूचना दी। ललिता दौडी हुई आई और अन्य सेविकाओं की सहायता से मीरां को उठा कर उसके कमरे में ले गई।

नौकरों ने दूदा जी को भी सूचना दी। वे भी दौडते हुएमीरां के कमरे में गए। वैद्य बुलाए गए, उपचार हुआ, पर मीरां की मूर्च्छा न टूटी ।

तीसरे दिन मीरां ने आँखें खोलीं । उसने चारों ओर देखा और फिर, 'मेरे गिरिधर गोपाल' 'मेरे कृष्ण' कहती हुई फिर बेहोश हो गई। राव दूदा जी निरन्तर वहीं बैठे रहे । चौथे दिन

भी मीरां की यही दशा रही, पांचवें दिन भी वही और छठे दिन भी वही ।

सातवें दिन ललिता ने देखा कि भक्त रायदास जी तेजी से राजमहल की ओर चले आ रहे हैं। वे बिना किसी से कुछ कहे- सुने सीधे मीरां के कमरे में चले गए, और मीरां के पैरों पर गिरकर रोने लगे । छः दिन से मुँदी मीरा की आँखें खुल गई ।

"मैंने बहुत बङा पाप किया है, बेटी, मुझे क्षमा कर दे," रायदास जी ने रोते हुए कहा, "कल रात मैने स्वप्न देखा कि भगवान कृष्ण मुझ पर बहुत रुष्ट हैं, क्योंकि तुमने सात दिन से अन्न-जल तक नहीं कुआ है।"

फिर उन्होंने झोली से मूर्ति निकाली और उसे मीरां को देते हुए बोले, "लो बेटी, ये गिरिधर गोपाल तुम्हारे थे और और तुम्हारे ही रहेंगे। और हाँ, यदि तुम पर कभी कोई संकट आए तो गिरिधर गोपाल के इस अकिचन सेवक रायदास को याद कर लेना । तुम्हारी सहायता को दौङता चला आऊँगा ।"

मीरां उस मूर्ति को देखकर जैसे पूर्ण स्वस्थ हो गई। उसने उसे अपनी छाती से लगा लिया और उसके नेत्रों से जलधारा बह निकली ।

जिस दिन से रायदास जी गए थे, उसी दिन से मीरां को लग रहा था जैसे वह अपना सब कुछ खो बैठी है और अब मूर्ति पाते ही उसे लगा जेसे युग-युग से बिछुङे उसके गिरिधर गोपाल उमसे आ मिले हों। सात दिन पहले उसे स्वप्न में बुलाने वाले गिरिधर गोपाल अब उसके हाथों में थे और वह उन्हें पाकर अपना सारा दुख भूल गई थी।

सभी स्तब्ध खङे थे । मीरां धीमे से अपने पलंग पर से उतरी और भक्त रायदास जी के पैरों की धूल माथे पर लगाती हुई

बोली, "आप मेरे गुरु हैं, स्वामी जी ! आपने मुझे मेरे गिरिधर गोपाल से मिला दिया है।"

रायदास जी की आँखों से बरसते आँसुओं का वेग और भी बढ़ गया। उन्होंने मीरां के सिर पर आशीष का हाथ रखा और आँसू पोंछते हुए शीघ्रता से बाहर निकल गए।

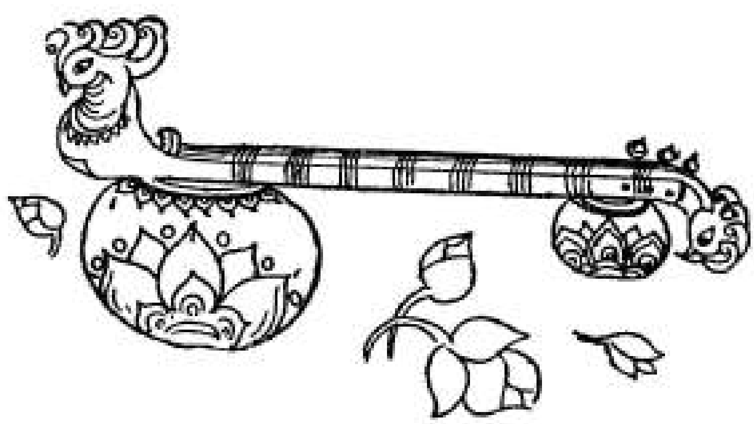

३

मीरां के लिए वह मूर्ति प्राणों से भी प्यारी हो गई। उसने चाँदी की चौकी बनवाई और उसे अपने कमरे के एक कोने में रखकर उस पर गिरिधर गोपाल की वह मूर्ति स्थापित कर दी। रोज प्रातः उठकर वह सबसे पहले मूर्ति के सामने जाकर सिर टेकती और रात को भक्त रायदास जी की तरह मूर्ति के आगे मन्द-मन्द नृत्य करती।

फिर उसने 'पग घुंघरू बांध मीरां नाची रे' अथवा 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई' भी गाना आरम्भ कर दिया। दिन में भी यह क्रम चलने लगा और सेविका ललिता इकतारा बजा कर उसका साथ देने लगी।

राव दूदा जी देखते और मूर्ति के आगे सिर नवा देते। वे भी परम वैष्णव भक्त थे। पर कभी-कभी वे चिन्तित भी हो उठते, क्योंकि मीरां के सभी काम भक्तों जैसे हो गए थे और उसे किसी राजघराने की रानी बनना था।

एक दिन किसी दूर के गांव की बारात गाजे-बाजे के सहित मेड़्ते से गुजरी। दूल्हा और बाराती अपने राजा दूदा जी का आशीर्वाद लेने के उनके महल के आंगन में आए। दूदा जी ने जलपान से उनका स्वागत किया और दूल्हे को वस्त्र, अलंकार तथा मुद्राएँ भेंट कीं।

जब बारात चली गई, तब मीरां ने दूदा जी से पूछा, "बाबा ! यह किसकी बारात थी ?"

"हमारे एक सैनिक की थी, बेटी," दूदा जी ने उत्तर दिया।

"वे कहाँ जा रहे हैं ?" मीरां ने उत्सुकता से पूछा।

"अगले गांव जा रहे हैं। वहाँ इस दूल्हे का विवाह होगा।"

"किससे बाबा ?"

"उस गाँव के एक किसान की बेटी से ?"

"वहाँ दूल्हा उस लड़की के साथ फेरे फेरेगा, ना, बाबा ?"

"हाँ, बेटी। तुमने तो यहाँ मेड़ते में एक विवाह देखा था, न ? उसी तरह उनका भी विवाह होगा।"

"क्या सब लड़कियों का विवाह होता है, बाबा ?"

"हाँ, बेटी ! सब लड़कियों का होता है। एक दिन उन्हें दुल्हन बन कर पराए घर जाना ही पड़ता है।"

"मेरा भी विवाह होगा, बाबा ?"

"हाँ बेटी, तुम्हारा भी विवाह होगा," राव दूदा जी ने उत्तर दिया और मीरां के इन प्रश्नों पर हँस पड़े। मीरां गम्भीर बनी रही। उस ने पूछा, "मेरा विवाह किससे होगा, बाबा ?"

अब दूदा जी इस बालिका को क्या समझाएँ। उन्होंने हँसते हुए कहा, "अरी पगली ! तू तो अपना विवाह कर चुकी है।"

"किससे बाबा ?" मीरां ने उतनी ही गम्भीरता से पूछा।

"अरे उसी से, जिसके आगे तू रात-दिन नाचा करती है," दूदा जी ने हँसते हुए उसके सिर पर हाथ फेर कर टालते हुए कहा।

"परन्तु मैंने उनके साथ फेरे तो फिरे ही नहीं ?" मीरां ने चिन्तित होकर कहा।

"तो फेर लेना। कौन रोकता है तुझे ?" दूदा जी ने उसी तरह हँस कर कहा।

"तो क्या वही मेरे पति हैं ?"

"हाँ, हाँ, वे ही तेरे पति हैं," दूदा जी ने उसे टालते हुए कहा, "जा अब मुझे कुछ आराम करने दे।"

मीरां चिन्तामग्न वहाँ से अपने कमरे में चली गई और मूर्ति के आगे बैठकर गम्भीर चिन्तन में लीन हो गई।

वह मन ही मन मूर्ति को सम्बोधित करके कहने लगी," भगवन ! क्या बाबा सच कहते हैं कि मेरा विवाह तुमसे हो चुका है ? क्या हरेक लड़की का विवाह होना जरूरी है ? तो क्या मुझे भी किसी से विवाह करना ही पड़ेगा ? क्या मेरा विवाह तुमसे हो चुका है ? तो फिर तुम मेरे स्वामी हुए। अब मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी और न तुम्हें ही कहीं जाने दूंगी।"

कुछ देर बाद उसने ललिता को बुलवाया और उससे मूर्ति के लिए पीला रेशमी अंगरखा तथा रत्नजटित छोटा-सा मुकुट मंगवाया।

दूसरे दिन जब सारी चीजें आ गईं, तब रात को मीरां ने ललिता की सहायता से मूर्ति को पीली रेशमी धोती पहनाई, अंगरखा पहनाया, सिर पर पगड़ी बाँधी, मुकुट पहनाया और मुकुट के नीचे रेशमी तागों की झालरें डाल दीं। अब गिरिधर गोपाल की मूत्ति दूल्हे की तरह सज गई थी।

मीरां ने भुक कर प्रणाम किया और फिर मूर्ति के चारों

और सात परिक्रमा कीं। ललिता स्तब्ध देखती रही।

परिक्रमा के बाद मीरां ने मूर्ति के पैरों की धूल लेकर सिर पर रखते हुए कहा, "भगवान् ! बाबा कहते हैं कि मेरा विवाह तुमसे हो चुका है। आज हमारी भाँवरें भी पङ गई हैं। आज से तुम मेरे स्वामी हुए !"

ललिता की आँखों से अश्रुधारा बह निकली।

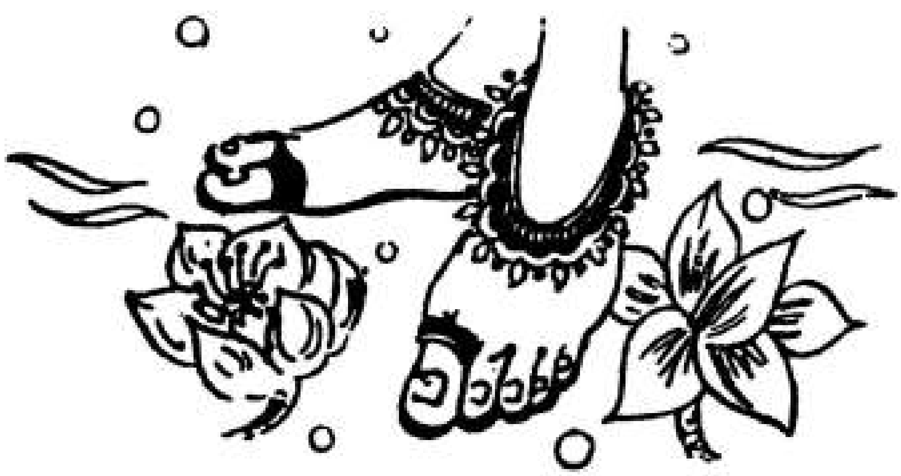

४

मीरां गिरिधर गोपाल को अपना पति मान कर रोज उनकी पूजा करती, गाती और नृत्य करती। दूदा जी ने उसकी शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया था। उसने राजघराने की हर प्रकार की शिक्षा प्राप्त की, परन्तु भगवान कृष्ण की भक्ति से तनिक भी विमुख न हुई। इसी प्रकार पाँच वर्ष बीत गए और मीरां बारह वर्ष की हो गई।

अब दूदा जी को मीरां के विवाह की चिन्ता सताने लगी। उन दिनों राजस्थान में १२-१३ वर्ष की आयु में ही लङ्की का विवाह करने की प्रथा थी।

दूदा जी ने अपने पाटवी-पुत्र (राज्य-उत्तराधिकारी) वीरमदेव से मीरां के विवाह के बारे में कहा और मेवाङ के वीर शिरोमणि महाराणा संग्रामसिंह (राणा सांगा) के पुत्र भोजराज से विवाह की बात चलवाई।

राणा सांगा ने सहर्ष इस विवाह सम्बन्ध की स्वीकृति दे दी। स्वीकृति लेकर दूत जब रात को मेङ्ता पहुँचा, तो राजकुमार भोजराज से मीरा का विवाह निश्चित होने का समाचार सुन राव दूदा जी फूले न समाए। वे उसी समय इसकी सूचना देने मीरां के कमरे में गए।

वहाँ उन्होंने देखा कि ललिता इकतारा बजा रही है और

मीरां मन्द-मन्द नाचती हुई गा रही है:

हरि मेरे जीवन प्राण-आधार।

और आसरो नांही तुम बिन तीनूं लोक मंझार ।।

वृद्ध दूदा जी दरवाजे के पास ही बैठ कर मीरां का भजन सुनने लगे। उनकी उम्र इस समय ७५ वर्ष की हो गई थी। अब शरीर में पहली जैसी फुर्ती नहीं रह गई थी। उन्होंने पीछे दीवाल पर सिर टेक दिया और आँखें बन्द कर भजन सुनने लगे।

ललिता इकतारा बजाती रही और मीरां गाती रही-

आप बिना मोहि कछु न मुहावै, निरख्यो सब संसार।

'मीरा' कहे मैं दासी रावरी, दीज्यो मती बिसार ।।

बहुत देर तक यही क्रम रहा। अन्त में मीरां ने मूर्ति के आगे सिर नवाया और अपने पलंग की ओर जाने लगी। तभी उसकी दृष्टि दूदा जी पर पड़ी।

"बाबा, बाबा" कहती हुई वह दूदा जी के निकट आकर घुटने टेक कर बैठ गई। उसने देखा दूदा जी का शिथिल शरीर दीवाल के सहारे टिका है और उनकी बूढ़ी आँखों की कोरों में आँसू की बूंदें अटकी हुई हैं।

मीरां ने फिर 'बाबा' पुकारा और उन्हें हिलाया। मीरां का स्पर्श पाते ही दूदा जी का शरीर एक ओर लुढ़क गया। मीरां हतप्रभ खड़ी हो गई। ललिता ने विस्फारित नेत्रों से दूदा जी की और देखा और यकायक उसके मुँह से हल्की-सी चीख निकल गई। वह रोती हुई वीरमदेव जी को बुलाने के लिए भागी।

वीरमदेव जी आए, वैद्य आए और भी अनेक दरबारी, सेवक- सेविकाएं आईं। सारे नगर में कुहराम मच गया। दूदा जी इस असार संसार से विदा होकर अपने चतुर्भुज जी से मिलने जा चुके थे।

दूदा जी की मृत्यु से मेड़्ता भर में शोक की लहर छा गई। मेवाड़ से राणा सांगा ने दूत के हाथ शोक संदेश भेजा। मीरां के जीवन में यह पहला अवसर था जब उसने अपनी आँखों के सामने किसी की मृत्यु देखी थी और वह भी अपने बाबा की, जो उसे अपने प्राणों की तरह लाड़-प्यार से रखते थे।

मीरां को इस मृत्यु से अत्यधिक शोक हुआ और संसार के प्रति उसकी विरक्ति-भावना और भी बढ़ गई।

राव वीरमदेव मेड़्ता की गद्दी पर बैठे। उन्होंने अपनी सद्बुद्धि से मेड़्ता राज्य का संचालन आरम्भ कर दिया।

मीरां गुमसुम रहने लगी। बाबा की मृत्यु से उसे गहरी चोट पहुँची थी। अब उसने नाचना बन्द कर दिया था, केवल गाती थी, और गाते-गाते भी अचानक रो पड़्ती थी।

राव वीरमदेव जी ने ललिता से यह सब सुना तो मीरां के पास आकर बोले, "बेटी ! इस असार संसार में हमेशा कोई नहीं रहता। राव जी नहीं रहे तो उनके स्थान पर मुझे समझ। मैं तुम्हें तनिक भी कष्ट नहीं होने दूंगा और एक वर्ष बाद ही तुम्हारा विवाह कर दूंगा।"

मीरां दोनों हाथों से मुंह छुपाकर फफक-फफक कर रो पड़ी। वीरमदेव जी से यह करुण दृश्य देखा न गया। वे अपने आँसू पोंछते हुए मीरां के कमरे से बाहर चले गए।

वीरमदेव जी ने राणा साँगा से मीरां और राजकुमार भोजराज के विवाह के सम्बन्ध में फिर बातचीत करने ब्राह्मण भेजा। राणा सांगा ने उत्तर में कहलवाया कि "क्षत्री का एक ही गुरु मंत्र होता है कि 'प्राण जाएं पर वचन न जाए।' सो मीरां हमारी पुत्र-वधू है। जब आप चाहें विवाह का दिन निश्चित कर दें।"

फलतः राव दूदा जी की मृत्यु के एक साल बाद ही मीरां का चितौड के राणा सांगा के पुत्र राजकुमार भोजराज के साथ विवाह का दिन निश्चित हो गया। मीरां ने बहुत विरोध किया, पर वीरमदेव जी को पूरा विश्वास था कि विवाह होने पर मीरां का शोक कम हो जाएगा और वह सद्गृहिणी बन जाएगी । इतने बडे राजघराने में मीरां को कोई कष्ट नहीं होगा और भोजराज जैसा सर्वगुण-सम्पन्न पति पाकर वह धन्य हो जाएगी ।

अतः बडी धूमधाम से विवाह कर दिया गया । विवाह- मण्डप में भी मीरां अपने साथ गिरिधर गोपाल की मूर्ति लिए रही और सम्पूर्ण मन से यही मानती रही कि उन्हीं के साथ उसका विवाह हो रहा है।

विवाह के बाद उसके ताऊ राव वीरमदेव, उनके पुत्र जयमल और अनेक स्वजनों ने बिलखते हुए मीरां को विदा किया । उन्होंने साथ में उसकी सेविका ललिता को भी भेज दिया ।

राणा सांगा गाजे-बाजों के साथ मीरां को अपनी पुत्रवधू बना कर चित्तौड ले गए। तीन दिन तक सारे मेवाड में दीवाली मनाई गई ।

५

चित्तौड़ में मीरां को किसी भी चीज की कमी नहीं थी। भोजराज जैसा वीर और मृदुभाषी पति उसे मिला था। पर महल की उस चहारदीवारी में अपनी सास और ननदों के बीच उसे लगता जैसे उसका दम घुटा जा रहा है। बेचारी तेरह वर्ष की बालिका, जो मेड़ते में निश्शंक हिरणी की भाँति घूमती और जब चाहे अपने भगवान के आगे गाती तथा नाचती, वह अब अपरिचितों के बीच घिरी रहती और उसे ससुराल तथा राज- घरानों के सभी अदब-कायदे बरतने पड़ते।

राणा सांगा ने अट्ठाईस विवाह किए थे। उनके सात पुत्र और चार पुत्रियां थीं। पुत्रों में कुछ के विवाह हो चुके थे। इसके अलावा राणा सांगा के तेरह भाई थे, जिनमें से कुछ उन्हीं के साथ रहते थे। इस प्रकार अन्तःपुर राजघराने की स्त्रियों से भरा-पूरा था। इसके अतिरिक्त बहुतायत से सेविकाएं, दासियां आदि थीं।

मीरां इन सब के बीच एक कक्ष में ललिता के साथ रहने लगी। उसने एक ध्रोर चौकी सजा कर उस पर मूर्ति रख दी और नित्य उसकी पूजा करती। पर जब कभी वह गाती और नाचती, तभी अन्तःपुर की स्त्रियों में खलबली मच जाती।

कुछ उसे कुलक्षिणी कहकर पुकारती और कहतीं कि वह कुलमर्यादा का उल्लंघन कर रही है; कुछ उसे सती-साध्वी कह कर पुकारती और कहतीं कि वह तो कृष्णमयी हो गई है, उसे कुल-परम्परा से क्या लेना देना; और कुछ तटस्थ होकर यह सब देखतीं तथा सुनतीं। इस प्रकार अन्तःपुर में मीरां का किसी न किसी प्रकार से जिक्र चलता ही रहता।

महारानी को मीरां का गाना और नाचना बहुत बुरा लगता। उनके घर की कुलवधू इस तरह नाचे, वह इसे बर्दाश्त न कर पातीं। अन्य स्त्रियां भी उनकी हां में हां मिलातीं और अवसर पाने पर उनके कान भरतीं। परन्तु मीरां की ननद ऊदांबाई, देवरानी अजब कुँवरी और कुछ अन्य स्त्रियां श्रद्धा और आदर से मीरां के भजन सुनतीं, नृत्य देखतीं और स्वयं भी भजन गुन- गुनाती रहतीं। ललिता तो सदा उसके साथ छाया की तरह रहती।

भोजराज मीरां को बहुत प्यार करने लगे थे। वे मीरां का बहुत ध्यान रखते और उसे बार-बार उदास रहने तथा रोने का कारण पूछते, पर मीरां कुछ न बताती।

अन्त में भोजराज जी के बार-बार पूछने पर मीरां ने रोते- रोते कहा, "मैं वृन्दावन जाना चाहती हूं। मुझे वहां भिजवा दीजिए।"

भोजराज जी राजी हो गए। उन्होंने अपने पिता राणा सांगा से अनुमति ली और मीरां के वृन्दावन की यात्रा का पूरा प्रबन्ध कर दिया।

पालकी आ गई, नौकर-कहार आ गए, ब्राह्मण, सेवक, सेविकाएं सभी का प्रबन्ध हो गया, लेकिन मीरां ने पैदल ही वृन्दावन-यात्रा की इच्छा प्रकट की। फलतः शुभ दिन निश्चित

करके मीरां अपनी सेविका ललिता, दो ब्राह्मण और दो दासियों के साथ वृन्दावन रवाना हो गई। उनका सारा साज-समान ऊंटों पर लाद कर साथ में भेज दिया गया। 000000

वृन्दावन पहुँच कर मीरां सीधे गिरिधर गोपाल के मन्दिर में गई और भगवान की मूर्त्ति के पैर पकङ कर आंसुओं से उन्हें धोने लगी।

कुछ ही दिनों में उसने वृन्दावन के सभी मन्दिरों के दर्शन किए और फिर गिरिधर गोपाल जी के मन्दिर के निकट ही एक कुटिया में रहने लगी।

उसने ललिता को अपने पास रोक लिया और दोनों सेविकाओं तथा ब्राह्मणों को वापस मेवाङ भेज दिया और उनसे कह दिया कि वे महाराणा जी तथा भोजराज जी से कह दें कि मीरां ने अब आयुपर्यन्त वृन्दावन में ही रहने का निश्चय कर लिया है। अब वह चित्तौङ नहीं लौटेगी।

भोजराज जी उसी दिन से रात-दिन चिन्तामग्र रहने लगे थे, जिस दिन मीरां वृन्दावन रवाना हुई थी। ब्राह्मणों और दासियों के लौट आने पर जब उन्होंने मीरां का सन्देश सुना तो वे अत्यन्त निराश हो गए।

राणा सांगा ब्राह्मणों के मुँह से मीरा का सन्देश सुन कर दौङे-दौङे भोजराज के पास आए और बोले, "बेटा ! बहू नादान बच्ची है। यहां उसे न जाने क्या कष्ट था कि वह वृन्दावन में ही रहने लगी। जाओ, उसे मना लायो। उससे कहना कि राणा ने कहा है कि उसे यहाँ किसी प्रकार से कोई कष्ट नहीं होगा। कोई उसे कुछ न कहेगा।"

पिता की बातें सुन कर भोजराज जी का ढाढस बंधा। वे

वृन्दावन जाने को तैयार हो गए। दूसरे ही दिन वे साज-सामान ऊंटों पर लदवा कर और रथ पर सवार होकर चल दिए।

वृन्दावन के निकट ही भोजराज जी ने पड़ाव डाला। रात को बहुत देर तक वे मीरां के ही विचारों में खोए रहे। वे सोचने लगे कि यदि मीरां ने चित्तौड़ जाने से मना कर दिया तो ? मीरां के बिना चित्तौड़ जाने से तो अच्छा है कि जोगी बनकर वृन्दावन में ही रहा जाए।

फलतः दूसरे दिन भोजराज जी ने समस्त सेवक और साज- समान वापस चित्तौड़ भिजवा दिया और आप भगवा वस्त्र पहन कर वृन्दावन रवाना हो गये।

वृन्दावन में वे मीरां की खोज में गली-गली भटकने लगे। अन्ततः बाँके बिहारी जी के मन्दिर में उन्होंने मीरां को पहचान लिया। उस समय मीरां 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई,' गाती हुई बाँके बिहारी जी की मूर्ति के आगे नृत्य कर रही थी। मन्दिर में स्त्री-पुरुषों की भीड़ लगी थी। ललिता इकतारा बजा रही थी। कुछ साधूगण खंजड़ी बजा रहे थे और सभी झूम-झूम कर 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई' गा रहे थे।

भोजराज वहीं एक कोने में बैठ गए। काफी रात गए कीर्तन समाप्त हुआ। मीरां ललिता के साथ अपनी कुटिया की ओर चली तो भोजराज भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े और मीरां जब अपनी कुटिया के अन्दर चली गई, तब भोजराज जी निकट ही गिरधर गोपाल के मन्दिर की सीढ़ियों पर सो गए।

ललिता ने यह बात ताड़ ली। उसने मीरां से कहा। सुबह

होते ही मीरां कुटिया से निकल कर मन्दिर में गई तो देखा कि मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठा एक साधू उसे एकटक देख रहा है।

पूजा करने के बाद मीरां ने बाहर आकर साधू से पूछा, "महाराज। कौन हैं आप ?"

"पहचानो ?" साधू ने एकटक मीरां की ओर देखकर कहा।

"क्षमा करें, मैं तो आपको पहचानतो नहीं," मीरां ने साधू की ओर देख कर कहा।

"भली भाँति पहचानती हो। तनिक प्रयत्न करो," साधू बोला।

मीरां ने गौर से देखा और उसका चेहरा पीला पङ गया। बोली, "आप ? यहाँ ?"

"हां, मीरां," साधू ने कहा, "तुम्हारे प्रेम का दीवाना अब तुम्हारे ही पास पहुँच गया है। चलो, मेरे साथ चित्तौङ चलो।"

"नहीं, मैं नहीं जा सकती, कंवर जी !" मीरां ने कहा, "मैं जोगिन हूँ, आपके राजघराने में मेरा क्या काम ? आप जाइए।"

"तो मैं भी नहीं जाऊंगा, मीरां ! तुम्हारे अलावा मेरा बहां है ही कौन," भोजराज जी ने कहा, "या तो तुम चलो या में भी यहीं धूनी रमा लूंगा।"

"हठ न करो, कंवर जी ! मैं न जा सकूंगी," मीरां ने कहा और अपनी कुटिया की ओर बढ़ गई।

भोजराज ने उसके पीछे-पीछे चलते हुए कहा, "सुनो, मीरां- बाई ! मेरे पिता और तुम्हारे ससुर ने कहा है कि अपने घर

लौट आओ। तुम्हें कोई भी कुछ न कहेगा।"

"मैं वहाँ कहाँ जाऊं कुंवर जी," मीरां ने नम्रता से कहा, "मैं तो अपने गिरिधर की चेरि हूँ। जहाँ रहूँगी, वहीं उनकी सेवा करती रहूँगी। मुझे यहीं रहने दीजिए। आप चित्तौड़ लौट जाइए।"

"मीरां मैं, अब अकेले नहीं लौटूंगा। तुम्हारे बिना मैं चित्तौड़ में अकेले न रह सकूंगा। और फिर वहाँ लोग भी तो कहते हैं कि मीरां को कुछ लाज शरम भी तो होनी चाहिए। यहाँ तुम अकेले कैसे रहोगी ?"

"मैं तो लाज शरम छोड़ चुकी हूँ, कंवर जी ! मुझे किसी के कुछ भी कहने का क्या डर?" मीरां ने कहा।

"पर दोनों कुलों की मर्यादा तो है। राव दूदा जी की पौत्री और राणा सांगा की पुत्रवधू यहाँ निहगे साधुओं के बीच," भोजराज जी ने कहा, "यह आवश्यक नहीं है कि सभी साधू भक्त ही हों। कुछ तो लम्पट होते हैं। तुम्हें भक्ति ही करनी है तो अपने घर पर करो। धूर्तों से बची रहोगी और दोनों कुल बदनाम भी न होंगे। तुम क्षत्राणी हो, तुम्हें अपने कुल की मान-मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए।"

मीरां एकटक भोजराज की ओर देखती रही। उन्होंने फिर कहा, "विश्वास करो, मीरां ! तुम्हारे महल के पास ही तुम्हारे लिए एक मन्दिर बनवा दूंगा। वहाँ जो कुछ करना चाहो करना। कोई कुछ नहीं कहेगा। मैं तुम्हें कदापि नहीं रोकूंगा। बस चित्तौड़ चली चलो।"

मीरां सोचने लगी। कुछ क्षण रुक कर बोली, "अच्छा, मेरे यहाँ रहने से सिसौदिया कुल का अपयश होता है, तो चली

चलती हूँ। पर अब मेरे स्वामी गिरिधर गोपाल ही है और उनकी आराधना ही मेरे जीवन का ध्येय है।"

और दूसरे दिन मीरां तथा ललिता भोजराज जी के साथ चित्तौड़ रवाना हो गई।

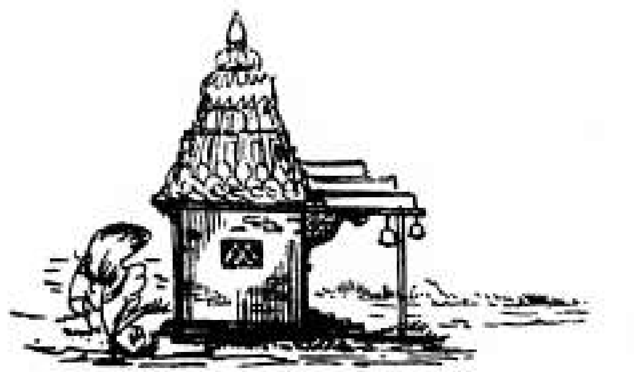

६

चित्तौङ में भोजराज जी ने अपने महल के नीचे के भाग का एक खण्ड मीरां के लिए अलग कर दिया और वहीं सामने एक छोटा-सा मन्दिर बनवा दिया। मीरां ललिता के साथ वहीं रहने लगी। उसे अब भजन-कीर्तन करने तथा नृत्य करने की पूरी छूट थी।

परन्तु महल की रानियां और दासियां उसे शान्ति से न रहने देतीं। रानियां सोचतीं कि मीरां ने यह कैसी उलटी रीति चलाई है। भगवान की पूजा सभी करते हैं, परन्तु उनके आगे नाचना; छिः छिः बङी बेहया है, 'कुलबोरनी' है।

महल में कोई साधू-महात्मा श्राता, तो मीरां उसका आतिथ्य- सत्कार करती, उससे धर्म-प्रवचन सुनती और उसे भजन सुनाती। इससे सभी लोग उसे 'बावरी' समझते और कहते यह तो 'मदमाती' है, 'जगहँसाई' कर रही है।

बात राजमहल से बाहर नगर में भी फैलने लगी। राणा सांगा और भोजराज जी का सदैव यही प्रयत्न रहता कि मीरां को कोई कष्ट न हो, पर राजमहल में जो काना-फूसी चलती उसे वे रोक न पाते।

भोजराज जी को उनकी माता तथा अन्य स्त्रियां मीरां के बारे में उलटी-सी बातें बतातीं। भोजराज सुनते और सिर नीचा

किए चले जाते । वे जानते थे कि मीरां दूज के चाँद-सी पवित्र है ; केवल साधू-संतों के आगमन के कारण घर की स्त्रियां उसे बदनाम कर रही हैं। लेकिन वे अपनी मर्यादा में रहते और कभी किसी को अपशब्द न कहते।

परन्तु उन पर इसका अच्छा असर न पङा। वे उदास रहने लगे। वे अपने कक्ष से मीरां को मन्दिर में जाते देखते और उसका भजन-कीर्तन सुनते और नृत्य देखते। कभी-कभी वे स्वयं भी वहाँ जाकर बैठ जाते।

महारानी जी उन्हें बार-बार दूसरा विवाह करने को कहतीं, पर वे न मानते । दुःख-सुख हर स्थिति में वे मीरां के साथ रहना चाहते थे। महारानी के आग्रह की बात जब मीरां तक पहुँची, तब उसने भी भोजराज जी से दूसरा विवाह करने को कहा, पर वे न माने। मीरां के अधिक आग्रह करने पर वे उसके पास कक्ष से उठ कर चले जाते।

महारानी जी भोजराज जी के उदास रहने और दूसरा विवाह न करने का मूल कारण मीरां को ही समझतीं। वे उसे अवसर पाने पर कङी से कङी बातें कह देतीं और हर प्रकार से कष्ट देने का प्रयत्न करतीं। अब ससुराल में केवल उसकी छोटी ननद ऊदांबाई, देवरानी अजब कुँवरी और दासी ललिता ही ऐसी रह गई थीं, जिन्हें मीरां से सहानुभूति थी और जो मीरां को कष्टों से उबारती रहती थीं।

धीरे-धीरे परिवार में कलह बढ़ने लगा। इसका प्रभाव भोजराज जी पर अच्छा न पङा। वे बीमार रहने लगे और अभी विवाह हुए ७-८ वर्ष ही बीते थे कि एक दिन अचानक ही भोज- राज जी इस असार संसार से चल बसे।

घर में कुहराम मच गया। सभी स्त्रियां मीरां को दोष देने

लगीं कि उसी की उपेक्षा के कारण भोजराज जी की मृत्यु हुई है। मीरां को भी लगता कि वह सद्गृहिणी की तरह भोजराज जी की सेवा न कर पाई, पर वह लाचार थी। वह पहले ही गिरधर गोपाल को वर चुकी थी और उन्हें ही अपना सर्वस्व मानती थी। भोजराज जी को वह कभी भी पति के रूप में न देख पाई थी। पर अब उनकी मृत्यु से उसे लगा कि उनकी मृत्यु का मुख्य कारण वही है।

उसे संसार से और भी विरक्ति हो गई। उधर भोजराज जी की मृत देह पडी थी और घर के सभी प्राणी उसे घेरे फूट-फूट कर रो रहे थे; और इधर मीरां अपनी सेविका ललिता को साथ लेकर वृन्दावन की तरफ चल दी।

परन्तु महारानी की मुंह लगी दासी मिथुला ने उसे जाते देख लिया। उसने तुरन्त महारानी जी को सूचना दी। महा- रानी जी अपने पुत्र के शव को छोङ कर बाहर आई और सैनिकों को मीरां को पकङने के लिए भेज दिया। मीरां अभी महल से कुछ दूर ही जा पाई थी कि सैनिक उसे वापस महारानी के पास ले आए।

महारानी क्रोध से बोली, "कुलबोरनी, पापिन, हमारे पुत्र को खा कर अव जगहंसाई कराने जा रही है। कलंकिनी, डायन कहीं की !"

फिर उन्होंने सैनिकों को आज्ञा दी, "जाओ इसे इसकी कोठरी में बन्द कर के बाहर से ताला लगा दो।"

बेचारी मीरां बिलखती रह गई। दासियों ने उसे कमरे में ले जाकर बन्द कर दिया।

मेवाङ भर में शोक व्याप्त था। पुत्र-शोक से राणा सांगा मूछित हो गए थे। उधर भोजराज जी के पार्थिव शरीर के लिए

चन्दन की लकड़ियों की चिता तैयार की जा रही थी।

तभी उसी दासी ने महारानी जी के कान में चुपके से कहा, "अन्नदाता ! यदि मीरांबाई को सती कर दिया जाए, तो सारा झंझट दूर हो जाएगा। सती की प्रथा तो हमारे यहां पूर्वजों से चली आ रही है।"

खुशी से महारानी की आंखें चमक उठीं। वे वीर क्षत्राणी थीं। सती का सुझाव उनके मन के अनुकूल था । उन्होंने ब्राह्मणों से परामर्श किया और मीरां के सती होने की बात फैला दी ।

ऊदांबाई दौड़ती हुई मीरां के पास गई। वह कमरे में बन्द थी । उसने दरवाजे की दरार पर मुंह लगा कर जोर से पुकारा, "भाभी, भाभी !"

मीरां दरवाजे के पास आ गई। उसने पूछा, "क्या है, ऊदां ?"

"भाभी, गजब हो गया," ऊदां ने रोते हुए धीमे से कहा, "महारानी तुम्हें सती कराने का प्रबन्ध कर रही हैं।"

"मुझे सती कराने का ?" मीरां ने कहा, "पर मैं सती नहीं होना चाहती । मेरे स्वामी तो गिरिधर गोपाल हैं और वे अजर- अमर हैं। लेकिन यदि वे मुझे जला कर मार डालना चाहते हैं, तो जैसी उनकी इच्छा ।"

"नहीं भाभी, नहीं। यदि तुम सती नहीं होना चाहती; तो जबरदस्ती क्यों ?" ऊदां ने क्रुद्ध हो कर कहा, "यह अन्याय है। मैं महाराणा जी के पास फरियाद लेकर जाती हूं।"

"सुनो तो "मीरां ने कहा, पर ऊदांबाई अनसुनी कर वापस भाग गई ।

महारानी ने दासियों के हाथ मीरां के लिए वस्त्र, अंलकार तथा सभी शृंगार-प्रसाधन भेज दिए और कहला दिया कि सती होने के लिए तैयार हो जाए। ललिता रोते-रोते उसे वस्त्र-आभूषण पहनाने लगी।

उधर ऊदांबाई ने जाकर राणा सांगा के पैर पकङ कर सभी बातें उन्हें बतला दीं। राणा सांगा गम्भीर हो उठे। ऊदांबाई राणा के चरण पकङ कर रोती रही और कहती रही, "भाभी को बचाओ, दाता ! आपकी पुत्री फरियाद लेकर आई है। न्याय करो। भाभी सती नहीं होना चाहती। महारानी जी उनकी हत्या कर रही है। अपनी पुत्रवधू को बचाओ, दाता !"

राणा सांगा ऊदां को उसी तरह बिलखता छोङ कर बाहर झरोखे में चले गए और दोनों हाथ पीछे बांधे चिन्तित मुद्रा में टहलने लगे। पुत्र की असामयिक मृत्यु, महारानी का षड्यन्त्र, उदां की फरियाद, और मीरां का दुख- राणा का मस्तिष्क सुन्न हो गया था।

अन्तिम संस्कार की पूरी तैयारियां हो चुकी थी। मीरां भी तैयार थी। वह सती होने से पहले अन्तिम प्रणाम करने महाराणा जी के कक्ष में पहुंची। महारानी, राणा सांगा की अन्य रानियां, पुत्रियां, पुत्रवधुएं सभी सती का मंगलगान करती हुई मीरां के साथ थीं। सब से पीछे कलपती-बिलखती ललिता थी। ऊदां अब गम्भीर हो गई थी। उसके आंसू सूख चुके थे और अब वह वीर क्षत्राणी की तरह तेजोमय दृष्टि से महाराणा की ओर देख रही थी।

मीरां ने शीश झुका कर महाराणा को प्रणाम किया। महाराणा ने आशीर्वाद के लिए हाथ उठाते हुए पूछा,

"बेटी ! क्या तुम अपनी इच्छा से सती हो रही हो ?"

मीरां ने कोई उत्तर नहीं दिया। राणा की गरजदार आवाज सुन कर तथा क्रोधित मुखमुद्रा देख स्त्रियों ने गाना बन्द कर दिया। कक्ष में गम्भीर निस्तब्धता छा गई । राणा ने फिर गम्भीरता से पूछा. "हमें उत्तर दो, बहू !"

मीरां चुप ही रही। उसने केवल इन्कार में सर हिला दिया । महाराणा क्रोधित हो उठे और अपने आसन से खडे हो गए । "तो फिर किसने तुम्हें सती होने को कहा है ?" उन्होंने

गरज कर पूछा। पूरे कक्ष में कंपकंपी छा गई । "महारानी की आज्ञा है," मीरां ने धीमे स्वर से उत्तर दिया ।

"महारानी की आज्ञा कैसी ?" राणा ने कड्क कर कहा, "सती अपनी इच्छा से हुआ जाता है, किसी की आज्ञा से नहीं । जाओ अपने कमरे में।"

ऊदां की आंखों से जलधारा बह निकली। उसने दौड कर महाराणा जी के चरण पकड लिए । ललिता आगे बढ़ कर मीरां से लिपट गई और फूट-फूट कर रोने लगी । महारानी और अन्यत्र स्त्रियां चुपचाप कमरे से बाहर निकल गईं।

७

इस घटना से दो मुख्य बातें हुईं। एक तो यह कि मीराँबाई महारानी की आँखों में बुरी तरह खटकने लगी, और दूसरे मेवाङ ही नहीं बल्कि उस से बाहर भी मीरां के बारे में अनेक अच्छी-बुरी बातें फैलने लगीं।

महारानी जी राणा सांगा के भय से खुले रूप से तो कुछ न कर पातीं परन्तु जब भी उन्हें मीरां को कष्ट देने का अवसर मिलता तो वे कभी न चूकतीं। मीरां के कक्ष में साधू-संतों का आगमन उन्हें फूटी आँखों न सुहाता। वे उसे पथभ्रष्टा और कुल-कलंकिनी समझतीं। वे स्वभावतः मीरां के विरुद्ध कुछ करतीं भी, परन्तु उन्हें डर था कि कहीं ऊदां या अजब कुँवरी जाकर महाराणा के सामने भंडाफोङ न कर दे। अतः वे मन ही मन कुढ़ती रहतीं और जो भी उन्हें अपने पक्ष में जान पङता उसी से अपने मन की कुढ़न निकालती रहतीं।

अन्तःपुर की ये बातें धीरे-धीरे बाहर फैलने लगीं- कुछ दास दासी, नौकर-चाकरों के द्वारा और कुछ साधू-संतों द्वारा। मेवाङ और मेवाङ से बाहर भी मीरांबाई का नाम फैलने लगा। कुछ उसका नाम सुन कर नाक-भौं सिकोङते और कुछ श्रद्धा से सिर नवाते। कुछ कहते कि वह योगिनी है, साक्षात् देवी का रूप।

दूर-दूर तक ये बातें फैलने लगी और दूर-दूर के साधू-संत उसके दर्शनों के लिए आने लगे। अनेक धर्म-प्रवर्तक समझने लगे कि यदि मीरां उनकी अनुयायिनी हो जाए तो देश भर में उनका धर्म फैल जाएगा। अतः वल्लभ-सम्प्रदायी, नाथ-पंथी आदि सभी आते और मीरां से सत्संग करते तथा उसे अपना सम्प्रदाय स्वीकार करने को कहते। विदुषी मीरां श्रद्धा से उनके विचार सुनती, भजन सुनती, कीर्त्तन करती, पर किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय में सम्मिलित होने का उसका प्रश्न ही नहीं उठता था। वह तो एकमात्र गिरिधर गोपाल की आराधिका थी, उसे धर्म सम्प्रदायों से क्या सरोकार ? इतना अवश्य था कि अब तक वह केवल भक्त थी और अब तर्क-वितर्कों से उसके ज्ञान-चक्षु भी खुल गए थे। उसके भजनों में अब भगवान के समस्त साकार और निराकार रूपों का समावेश होने लगा था।

मीरां की देवरानी अजब कुँवरी भी नित्य प्रति, महारानी की निगाह बचा कर मीरां के कक्ष में आकर साधू-संतों के प्रवचन सुनती। वह वल्लभ सम्प्रदायी गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के तर्कों से इतनी प्रभावित हुई कि उसने गोस्वामी जी से वैष्णव धर्म की दीक्षा ले ली।

महारानी पर इसका बहुत बङा आघात पहुंचा, पर वे कुछ न कर सकीं, क्योंकि मेवाङ के उस राजघराने में शिव और भवानी की पूजा के साथ-साथ श्रीनाथ जी की भी पूजा होती थी और किसी का वैष्णव धर्म में दीक्षा लेना आपत्तिजनक न था। लेकिन महारानी इसे अपनी हार और मीरां की विजय समझने लगीं।

उन्होंने मीरां के पुरोहित रामदास जी को भङकाना शुरू कर

दिया। रामदास जी महाक्रोधी और कटु भाषी थे, पर मीरां की भक्ति देख कर वे उसका बहुत आदर करते थे। महारानी जी ने उनके कान भर दिए कि मीरां ढोंगी है, उसने केवल अपने मनोरंजन के लिए यह सब ढोंग रच रखा है। वह न तो किसी को गुरु मानती है और न किसी को अपने से बड़ा।

रामदास जी क्रोधी तो थे ही। मीरां को आजमाने चल दिए। वे ठेठ वैष्णव थे और वल्लभ सम्प्रदायी होने के कारण गुरु को गोविन्द से बड़ा समझते थे और प्रायः श्री आचार्य जी महाप्रभू स्वामी वल्लभाचार्य के गुणगान करते रहते।

वे मीरां की परीक्षा लेने उसके मन्दिर में चले गए। उनकी यह भी आन्तरिक इच्छा थी मीरां भी अजब कुँवरी की तरह ही वैष्णव धर्म की दीक्षा ले ले।

उनके मन्दिर में प्रवेश करते मीराँ ने श्रद्धापूर्वक उनका स्वागत किया। रामदास जी ने उसे आशीर्वाद देकर गिरिधर गोपाल की मूर्ति के आगे सिर नवाया और श्री आचार्य जी महाप्रभू के गुणगान में एक पद गाने लगे। मीरां श्रद्धा से सिर नत किए पद सुनती रही।

पद समाप्त होने पर मीरां ने श्रद्धापूर्वक रामदास जी से कहा "महाराज ! अब एक भजन ठाकुर जी (श्री कृष्ण भगवान) का भी सुना दीजिए।"

रामदास जी क्रोध में आकर खड़े हो गए। उन्हें यह बहुत बुरा लगा कि मीरां गुरु श्री आचार्य जी महाप्रभू को छोटा और श्री कृष्ण भगवान को बड़ा समझती है। वे कटुभाषी तो थे ही, फौरन कड़क कर बोले, "अरी राँड ! यह किसका पद था, क्या तेरे खसम का मूंड था ? जा आज से तेरा मुँह कभी नहीं देखूंगा।"

यह कह कर वे क्रोध से पैर पटकते हुए बाहर निकल गए।

घर पहुंच कर उन्होंने सामान संभाला और अपना सारा परि वार लेकर मेवाड़ छोड़ कर जाने लगे। मीरां को सूचना मिली तो वह दौड़ी-दौड़ी रामदास जी

के पास पहुंची। उसने बहुत हाथ पैर जोड़े, पर रामदास जी नहीं रुके। उन्होंने महाराणा-परिवार की वृत्ति छोड़ दी और अन्यत्र जाकर रहने लगे। वहाँ भी मीरां का जिक्र आते ही वे क्रोध से भड़क उठते और उसके बारे में उलटी-सीधी बातें करते। इससे मीरां की बदनामी फैलने लगी।

इस तरह मीरां के वैधव्य के पाँच वर्ष बीत गए। वह इस प्रकार के विरोध और अवहेलना की आदी हो गई। राणा सांगा का वरद हस्त उसके ऊपर था, अतः उस पर खुल कर कोई अत्याचार न कर पाता था।

परन्तु दुर्भाग्यवश राणा सांगा की मृत्यु हो गई और मीरां के सर से वह साया हट गया।

राणा सांगा की मृत्यु के वाद मीरां के अन्तःपुर से प्रायः सभी सम्पर्क टूट गए। वह उस भरे-पूरे राजभवन में वैरागिनी की तरह रहने लगी।

८

राणा सांगा के बाद उनके पुत्र कुँवर रत्नसिंह गद्दी पर बैठे। वे बहुत बुद्धिमान और सहृदय व्यक्ति थे। उनके शासन-काल में भी मीरां को उसी प्रकार भजन-कीर्त्तन करने की स्वतन्त्रता रही।

परन्तु तीन वर्ष राज्य करने के बाद जनता के वे लोकप्रिय महाराणा भी चल बसे और उनके स्थान पर बीस वर्षीय कुँवर विक्रमादित्य मेवाङ के महाराणा बने।

गद्दी पर बैठते ही विक्रमादित्य ने अत्याचार शुरू कर दिए। वे महाक्रोधी और अल्पबुद्धि व्यक्ति थे। वे खुशामदप्रिय भी थे। इसीलिए बीजावर्गी जैसा धूर्त और कपटी व्यक्ति उनका प्रमुख सलाहकार बन गया। वे हर बात में बीजावर्गी की सलाह लेते और बीजावर्गी सदैव उन्हें कपटपूर्ण सलाह देता। परिणाम यह हुआ कि सभी दरबारी और सामन्त उनके व्यवहार से असन्तुष्ट हो गए और बेचारी मीरां पर तो मानों मुसीबतों का पहाङ ही टूट पङा।

अब अन्तःपुर में महारानी (जो राणा सांगा की मृत्यु के बाद राजमाता कहलाने लगी थी) की मनमानी चलने लगी। मीरां के विरुद्ध उन्होंने राणा विक्रमादित्य के कान भरने आरम्भ कर दिए। विक्रमादित्य ने मीरां के भवन में साधू-संतों का आग-

मन बन्द करा दिया, महल में भजन-कीर्त्तन अथवा नृत्य करने पर रोक लगा दी और मीरां के कक्ष के चारों ओर पहरा लगवा दिया। बेचारी मीरां इन प्रतिबन्धों के बीच घुटने लगी। उसे केवल सुबह और शाम आरती करने के लिए मन्दिर में जाने की आज्ञा थी, बस।

दुखी मीरां सुबह होते ही मन्दिर में जाती और गिरिधर गोपाल के चरणों में गिर कर फूट-फूट कर रो पङती। उस प्रेम- दीवानी का दुख-दर्द जानने वाले केवल वही गिरिधर गोपाल थे। फिर शाम को भी वह इसी प्रकार मन्दिर में जाकर गिरि- धर गोपाल के चरणों में गिर कर रोती। प्रत्येक दिन यही क्रम चलता।

एक दिन इसी तरह सुबह मीरां मन्दिर में गिरिधर गोपाल के चरणों में सर टेके हुए थी और उसकी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह रह थी। तभी पीछे से घण्टी बजी और मीराँ को गहन-गम्भीर ध्वनि में सुनाई पङा, "साधना का मार्ग बहुत कठिन है, कण्टकाकीर्ण है। जो सच्चा भक्त है, जिसमें अटूट श्रद्धा है, वही इस मार्ग से आगे बढ़ सकता है। इस असार संसार के अत्याचारपूर्ण व्यवधान भक्त के मार्ग को अवरुद्ध नहीं कर सकते।"

मीरां ने मूर्ति के चरणों से सर उठाकर देखा। उसे पीछे एक जटाधारी साधू घण्टी पकङे दिखाई दिए। उसे वे कुछ परि- चित से लगे। उसे स्मरण हो आया कि ये साधू महाराज अनेक बार अन्य साधू-सन्तों के साथ उसके कक्ष में आए है, परन्तु कभी भी कुछ बोले नहीं। आज पहली बार उसने उनकी वाणी सुनी।

"महाराज ! आप कौन हैं ?" मीरां ने उत्सुकता से पूछा। "एक रमता जोगी, जिसके गिरिधर गोपाल की मूर्ति एक

बालिका ने छीन ली थी और अब जो भटकता हुआ वहीं पहुँच गया है, जहाँ वह मूर्ति स्थापित है," साधू ने उत्तर दिया।

"ओह ! गुरु जी !" मीरां ने श्रद्धा से सिर नवा दिया, "अनेक बार आप आए महाराज, पर मैं हतभागिनी कभी भी आपको न पहचान पाई।"

"मैं यह चाहता भी नहीं था कि तुम मुझे पहचानो, बेटी !" गुरु रायदास जी ने कहा, "तुम अपनी साधना में रत रहो। मैं तो रमता जोगी हूँ।"

"आप तो अनेक बार मेरी कुटिया पर दर्शन दे चुके हैं ?" मीरां ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उन्हें देखा।

"हाँ, बेटी ! गिरिधर गोपाल का आकर्षण अनेक बार मुझे यहाँ खींच लाया है। तुम्हारे ऊपर जो अत्याचार हो रहे हैं, मैं उनसे अपरिचित नहीं। लेकिन तुमने जो मार्ग अपनाया है, वह सभी मार्गों से श्रेष्ठ है। भगवान कृष्ण पर तुम्हारी जो अटूट श्रद्धा है, वही तुम्हारे मार्ग को प्रशस्त बनाएगी, तुम्हारे कष्ट दूर करेगी।"

"गुरुदेव ! यहाँ मेरा रहना दूभर हो गया है। मैं अत्याचार से नहीं डरती, पर गिरिधर गोपाल के आगे नृत्य करने पर भी प्रतिबन्ध है। आज मैं इच्छानुसार अपने प्रभु की सेवा-आराधना भी नहीं कर सकती। मैं मर जाऊंगी, गुरु जी ! मेरा जीवन निरर्थक जा रहा है।"

"नहीं, ऐसा न कहो, बेटी ! त्रिलोक के स्वामी सब जानते हैं। शरीर तो पार्थिव है, तन से नहीं तो मन से नाचो; इकतारा बजाकर भजन नहीं कर सकती तो हृदय में गिरिधर जी की मूर्ति सजा कर उनके गुणगान करो," रायदास जी ने कहा, "तुम्हारा पथ निश्चित है, पूर्णरूपेण आलोकित है, नागे बढ़ते जाओ।"

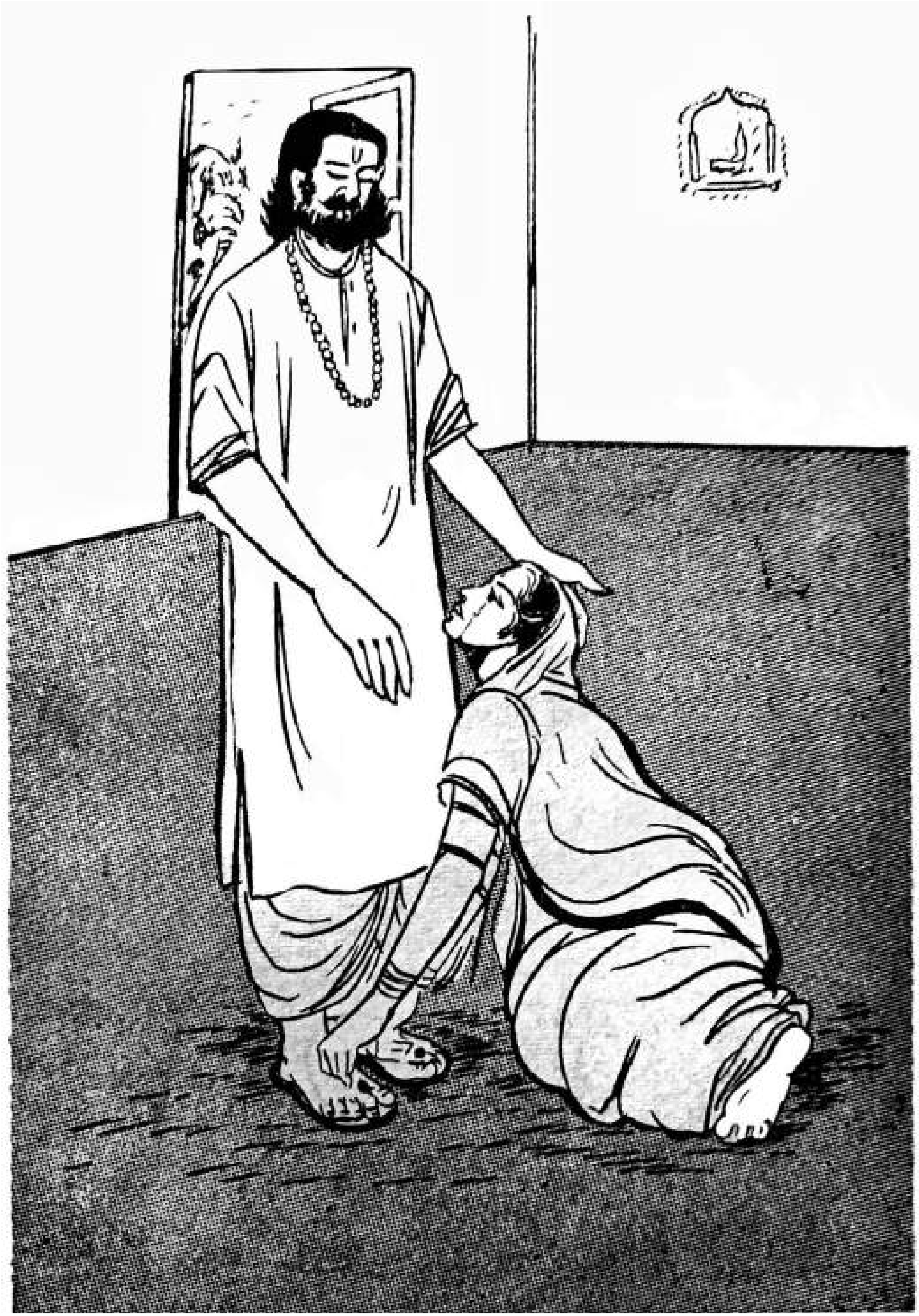

यह कह कर स्वामी रायदास जी ने हाथ उठाकर आशीष दी और एक बार फिर घण्टी बजाकर, गिरिधर गोपाल की चरण-रज ले बाहर चले गए।

मीरां के जैसे ज्ञान-चक्षु खुल गए हों। उसने भी गिरिधर गोपाल को सिर नवाया, चरण-रज ली और बाहर चली आई। उसने चारों ओर देखा। गुरु जी कहीं नहीं दिखाई पडे। वह गुनगुनाती हुई अपने कक्ष की ओर चल दी...

मेरो मन लाग्यो हरि सूं, अब न रहूँगी अटकी, गुरु मिल्या रैदास जी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी। कक्ष में आते ही उसने ललिता से कक्ष के सभी द्वार बन्द करने को कहा। ललिता ने बहुत दिनों बाद उसे प्रसन्न मुद्रा में देख कर संतोष की साँस ली और सभी द्वार बन्द कर दिए। मीरां ने फिर उसे इकतारा लेकर बैठने को कहा और फिर बहुत धीमे-धीमे दोनों पद गाने लगीं..

पायो जी मैं तो राम रतन धन पायो। वस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु, किरपा कर अपनायो।

९

परन्तु वे इस भजन को पूरा गा भी न पाई थीं कि द्वार पर जोर-जोर से प्रहार की ध्वनि सुनाई पङी। ललिता ने घबरा कर द्वार खोल दिया।

दोनों ने देखा कि राणा विक्रमादित्य अपने मुसाहिब बीजा- वर्गी के साथ हाथ में नंगी तलवार लिए द्वार पर खङे हैं। बीजावर्गी अन्दर झाँकने लगा।

राणा ने बाहर ही खङे रह कर कङक कर पूछा, "मेङतिनी भाभी ! बताओ आज तुम्हारे साथ मन्दिर में कौन था ?"

विक्रमादित्य के इस प्रश्न और उनकी भाव भंगिमा देखकर मीरां का मन इस मिथ्या लांछन से तङप उठा, लेकिन वह मौन रही।

"मुझे बीजावर्गी ने बताया कि आज सुबह उसने एक जटा- धारी को मन्दिर से बाहर निकलते देखा," राणा बोले, "और उसके कुछ ही देर बाद तुम भी मन्दिर से निकलीं। बोलती क्यों नहीं ? कौन था वह ?"

मीरां पर आक्षेप सुन कर ललिता क्रोध से काँप उठी। उसने अपने क्रोध को भरसक दबाने की चेष्टा करते हुए कहा, "अन्नदाता ! आज आप मेवाङ के महाराणा हैं। हम सब आपकी प्रजा है। परन्तु अपने प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय अग्रज की

विधवा पत्नी और माता समान अपनी भाभी पर यह लांछन लगाने से पहले आपने कुछ बुद्धि से काम तो लिया होता।"

दासी का उत्तर सुन विक्रमादित्य एक क्षण को अवाक् रह गए। उन्हें लगा कि वास्तव में उनसे भूल हुई है। परन्तु तभी बीजावर्गी ने उकसाया, " महाराज ! आपके सम्मान पर एक अकिचन दासी का यह आक्रमण ! राम, राम ! राणा के सामने एक दासी की यह हिम्मत !"

राणा विक्रमादित्य का क्रोध फिर भड्क उठा। वे कड्ककर बोले, "अब मेवाङ हमारा है। सब काम हमारी आज्ञा से होंगे। मेङतिनी भाभी का मन्दिर में जाना आज से बन्द। और यदि हमारी शान में किसी ने फिर उंगली उठाई तो यह तलवार उसके कलेजे के पार हो जाएगी।"

यह कह कर बीस वर्षीय राणा विक्रमादित्य ने तलवार ऊपर उठाकर चमकाई और जैसे आए थे, वैसे ही क्रोध में वापस चले गए।

अपने कक्ष में पहुँच कर महाराणा तख्त पर बैठ गए। उन्होंने अपने दोनों हाथ फैला कर तख्त पर टेक दिए। बीजावर्गी आकर उनके पैरों के पास बैठ गया।

"हमारी समझ में नहीं आता, बीजावर्गी, कि हम क्या करें। वे हमारी भाभी हैं, हमसे बडी हैं। फिर स्त्री पर तलवार चलाना बीर क्षत्रियों को शोभा नहीं देता," राणा ने गम्भीर होकर कहा, "और उनके बारे में जो तुम कहते हो उसका हमारे पास प्रमाण भी कोई नहीं।"

"प्रमाण ?" बीजावर्गी ने उत्तर दिया, "अन्नदाता ! मैंने स्वयं अपनी आँखों से एक जटाजूट धारी पुरुष को मन्दिर से निकलते देखा था। आखिर उसने किसकी आज्ञा से मन्दिर में

प्रवेश किया ? और फिर भी अन्नदाता को मेरा विश्वास न हो तो अपनी किसी विश्वस्त दासी को रात में अचानक उनके कक्ष में भेज दें। सारा भेद मालूम हो जाएगा। मैंने उन्हें रात को अनेक बार किसी से बातें करते हुए सुना है।"

"हां, यही करना होगा। तब हमारे पास प्रमाण हो जाएगा और हम सिंहासन पर बैठकर न्याय कर सकेंगे," राणा विक्रमा- दित्य ने कहा, "अच्छा मिथुला दासी को हमारे पास भेज दो" ।

"जो आज्ञा !" बीजावर्गी ने झुक कर प्रणाम किया और मिथुला को बुलाने चल दिया।

मिथुला दासी राजमाता और राणा विक्रमादित्य की विश्वस्त दासी थी। उसके आने पर राणा ने कहा, "देखो मिथुलाबाई ! तुम इस घर की विश्वस्त दासी हो, इसलिए इस

कुल की लाज बचाने के लिए तुम्हें नियुक्त कर रहा हूँ।" "राणा जी, आज्ञा दें ! मिथुला अपना सिर तक भेंट कर सकती है," मिथुला ने झुक कर प्रणाम करते हुए कहा ।

"तुमसे हमें यही आशा है, मिथुला ! आज आधी रात को तुम चुपके से अचानक मेङ्तिनी भाभी के कमरे में चली जाना । मैं आसपास ही खङा रहूँगा। यदि वहाँ कोई पुरुष हो तो फौरन मुझे इशारा कर देना । ध्यान रखना वह भाग न पाए ।"

"जो ग्राज्ञा, अन्नदाता !" मिथुला ने भुक कर प्रणाम किया। "बस, जायो और हाँ, यह बात किसी को मालूम न हो," महाराणा ने उसको चले जाने का इशारा करते हुए कहा, "याद रखना आज ग्राधी रात को ।"

मिथुला चली गई।

रात का दूसरा प्रहर बीत रहा था। मिथुला अपनी कोठरी में चौकी पर लेटी छत की ओर टकटकी बांधे विचार-मग्न थी।

आज उसे मीरां को नीचा दिखाने और महाराणा तथा राजमाता की और भी अधिक विश्वासपात्र बनने का अवसर मिल रहा था। परन्तु मीरांबाई की महानता और भक्ति के अनेक किस्से भी वह सुनती आ रही थी। मीरां के प्रति महाराणा की भावना से भी वह अपरिचित न थी। वह जानती थी कि मीरां को पापिन और ढोंगी सिद्ध करने के लिए आज महाराणा उसका उपयोग करना चाहते हैं। तो क्या उसे इसका लाभ नहीं उठाना चाहिए ? यदि आज वह अपने काम में सफल हो गई तो महा- राणा उसे मालामाल कर देंगे और वह महल की सबसे अधिक विश्वासपात्र दासी हो जाएगी। इस विचार मात्र से मिथुला की आखें खुशी के मारे चमक उठीं और मन उछलने लगा।

तभी दुर्ग के द्वार के वृहदाकार घड़ियाल ने टन-टन कर रात के दो पहर समाप्त होने की सूचना दी। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी और महाराणा के कक्ष की ओर चल पड़ी।

राणा विक्रमादित्य अभी तक अपने महल में जाग रहे थे। मिथुला के पहुँचते ही वे तुरन्त हाथ में तलवार लेकर तैयार हो गए और उसके पीछे-पीछे मीरां के कक्ष की ओर चल दिए। कक्ष से कुछ दूर एक खम्भे की आड़ में राणा खड़े हो गए और मिथुला आगे बढ़ गई।

उसने धीरे से मीरां के कक्ष का द्वार खोल कर अन्दर झांका, तो देखा खिड़की से शरद् की चाँदनी छन-छन कर पलंग पर लेटी मीरां के ऊपर फैली हुई है और वह एकटक चांद को देख कर कभी कुछ बोलती है और कभी गहरी गहरी सांस लेने लगती है। पलंग के पास ही धरती पर बिछी एक चटाई पर ललिता निद्रा- निमग्न है।

कुछ देर बाद उसने देखा कि मीरां एक ओर करवट लेकर

लेट गई है। उसने कमरे के चारों ओर देखने के लिए द्वार को कुछ और खोला, लेकिन ऐसा करने से द्वार की कुण्डी खड्क गई। कुण्डी की आवाज सुनते ही मीरां ने चौंक कर द्वार की ओर मुड्कर देखा। सामने एक नारी-मूर्ति को देख वह पलंग से उठ कर द्वार पर आ गई।

निकट पहुँचने पर सिथुला को पहचान कर बोली, "आओ, सखि मिथुला, अन्दर आओ। तनिक बैठ कर हमारा दुख सुनो।"

मिथुला अन्दर चली गई। उसने चारों ओर देखा, कोई न था। मीरां का वेदनामय मुख देखकर वह घबरा गई, मानो चोरी करते पकड्ी गई हो। वह भाग जाना चाहती थी, लेकिन मीरां ने उसकी बांह पकड् ली और पलंग पर अपने निकट बिठा लिया। मिथुला कुछ सकपकाई।

मीरां ने कहा, "घबराओ नहीं सखि ! तुम बिजाति हो, पर जो कोई अति अधीर अनुरागी होता है, उसे जाति-बिजाति का कोई ज्ञान नहीं रहता। वह तो, बस, अपने चित्त की ही कहता चलता है। तुम बड्े मौके से आई हो। सुनो-"

यह कर मीरां मिथुला के कन्धे पर सिर टेक कर गाने लगी :

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारतां, सब रैन विहानी।
सखियानि मिलि सीख दई, मन एक न मानी।
बिन देखें कल ना परै, जिय ऐसी ठानी।
मांग छीन व्याकुल भई, मुख पिय-पिय बानी।
अंतर बेदन विरह की, वहि पीर न जानी।
ज्यों चातक घन को रटे, मछरी बिन पानी।
'मीरां' व्याकुल बिरहनी, सुधि बुधि बिसरानी।

मिथुला ने देखा कि मीरां के आंसुओं से उसका कंधा भीग

गया है। उसे लगा जैसे करुणा का सागर उमङ-उमङ कर बरस रहा हो और वह उसमें भीगती चली जा रही हो, भीगती चली जा रही हो.. मानों उसमें डूब रही हो।

रात्रि का तीसर प्रहर, चांदनी रात और युग-युग की प्रेम- प्यासी मीरां का करुण गीत। मिथुला के हृद्धन्त्री के तार बज उठे, उसकी युग-युग की प्यास जाग उठी, उसके मन की करुणा- मय मां उभर आई। वह मीरां से लिपट गई। आंसुओं का तार बंध गया और वह उन्हीं में सराबोर हो गई।

महाराणा बङी देर तक बाहर मिथुला की प्रतीक्षा करते रहे। जब वह नहीं आई, तब खीझ कर चले गए।

दूसरे दिन सुबह उन्होंने सुना कि मिथुला वैष्णव धर्म स्वी- कार करके जोगन बन गई है। वे बहुत खीझे।

इसी प्रकार महाराणा ने बारी बारी सेपांच सेविकाओं को भेजा और वे पाँचों मीरां की तरह वैरागिन बन गईं। राणा मन मार कर रह गए।

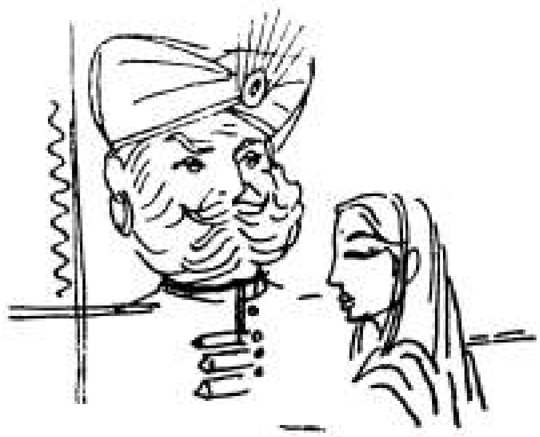

१०

अब सुबह और शाम मीरांबाई के साथ उस छोटे से मन्दिर में अनेक स्त्रियां जातीं, पूजा करतीं और फिर मीरांबाई के कमरे में लौट आतीं। दिन में तथा रात में भी वे द्वार बन्द रखतीं और मन्द स्वर में भजन-कीर्तन करतीं।

राणा विक्रमादित्य खीझते, कुढ़ते पर उन्हें कोई रास्ता न सूझता। राजमाता को सूचना मिली कि मीरां के कमरे में फिर से भजन-कीर्तन होने लगा है और महल की अनेक स्त्रियां उसकी अनुयायी होती जा रही है, तो उन्होंने राणा विक्रमादित्य को बुलवाया।

महाराणा के आने पर राजमाता ने पूछा, "राणा, तुम्हारे राज्य में यह सब क्या हो रहा है ? राजमहल की स्त्रियां अपनी कुलमर्यादा छोङ, घर-गृहस्थी त्याग कर जोगन बनती जा रही हैं और तुम चुपचाप बैठे देख रहे हो।"

"हमारी कुछ समझ में नहीं आ रहा है, राजमाता, कि हम क्या करें," महाराणा ने चिन्तित हो कर कहा।

"कोई न कोई राह तो निकालनी ही होगी," राजमाता ने उन्हें ढाढस बंधाया, "बीजावर्गी तुम्हारा मुँहलगा मुसाहिब है। वह ऐसे कामों में चतुर है। उससे सलाह लो।"

"जैसी राजमाता की आज्ञा," महाराणा ने झुक कर कहा और कक्ष से बाहर निकल गए।

उन्होंने अपने कक्ष में जाकर बीजावर्गी को बुलाया। बीजा- वर्गी ने आते ही जमीन तक झुक कर प्रणाम किया और बैठ गया। राणा ने सभी सेवकों को बाहर चले जाने को संकेत किया।

एकान्त होते ही उन्होंने बीजावर्गी से कहा, "हमारी कुछ समझ में नहीं आता, बीजावर्गी, कि हम क्या करें। हम देख रहे हैं कि हमारे ही राज्य में महल के अन्दर स्त्रियां कुलमर्यादा छोङ कर जोगन हुई जा रही हैं और हम कुछ नहीं कर पा रहे हैं। आज राजमाता ने बुला कर हमसे कह दिया है कि हमें यह सब रोक देना चाहिए। पर हम क्या करें ?"

यह कह कर महाराणा ने आंखें बन्द कर दीं और गहरी चिन्ता में निमग्न हो गए। उधर खुशी के मारे बीजावर्गी का चेहरा चमक उठा। वह समझ गया कि महाराणा अब पूरी तरह उसके हाथ में आते जा रहे हैं। वह दिन दूर नहीं, जब वह चित्तौङ का प्रधान मंत्री बन जाएगा।

"अन्नदाता, मैं एक अकिंचन दास हूँ। मुझ में इतनी बुद्धि कहां कि आपको कोई सलाह दे सकूं," बीजावर्गी ने खुशामदी ढंग से अपनी आवाज को यथाशक्ति दयनीय बनाते हुए कहा, "लेकिन एक तरीका मेरी समझ में आ रहा है। यदि अन्नदाता आज्ञा दें तो .."

"हां, हां, फौरन बताश्रो," राणा ने उत्साहित हो कर कहा, "इसी के लिए तो हमने तुम्हें बुलाया है। फिर तुम तो हमारे विश्वासपात्र सेवक हो।"

बीजावर्गी ने अपने मन की खुशी को दबा कर भयभीत दृष्टि से चारों ओर देखा और फिर उठकर महाराणा के कान

में धीमे से कहा, "महाराज ! चरणामृत कहकर विष भेजा जा सकता है। किसी को कानों-कान खबर भी नहीं होगी और वे चरणामृत समझ कर अवश्य पी लेंगी।"

महाराणा गम्भीर हो गए। कुछ क्षण रुक कर खडे होते हुए बोले, "हमारी कुछ समझ में नहीं आता। तुम जो चाहो करो।"

यह कह कर वे चल दिए। बीजावर्गी ने 'जो आज्ञा' कहते हुए जमीन तक सर झुका कर प्रणाम किया और आज्ञा पूरी करने माता भवानी के मन्दिर के पण्डा पण्डित उदयराम को कोठरी की ओर चल दिया।

उसने पण्डित उदयराम को काफी धन का लोभ देकर मीरां के कक्ष तक विष का प्याला ले जाने को तैयार किया । पण्डित जी जानते ही थे कि इन्कार का अर्थ है मृत्यु। उन्होंने 'हां' कह दिया, परन्तु हां कहते ही उनका सारा शरीर कांप उठा और पसीने से भीग गया ।

उन्होंने कांपते होंठों से बीजावर्गी से कहा, "कल प्रातः जाऊंगा ।"

बीजावर्गी ने उसकी पीठ ठोंकी और बोले, "अच्छा, कल सुबह ही सही, प्याला मुझ से ले जाना ।"

बीजावर्गी के जाते ही पण्डित जी का सारा शरीर सुन्न हो गया और वे वहीं पर हाथों से सर पकड कर बैठ गए। बेचारे धर्मप्राण व्यक्ति भवानी के उपासक पण्डित जी को क्या मालूम था कि एक दिन उन्हें राजघरानों के षड्यन्त्रों में भी हाथ बटाना होगा ।

ऊदांबाई माता भवानी की पूजा करके उधर से गुजरीं तो पण्डित जी को उस तरह बैठे देख हँस कर बोलीं, "क्या बात है,

पण्डित जी ! आज भवानी का प्रसाद अधिक पा गए क्या ?"

पण्डित जी ने ऊदां के पैर पकड लिए और फफक कर रोते हुए बोले, "बाई, मुझे बचाओ। मुझे इस घोर पाप से बचाओ ।"

"आखिर बात क्या है, पण्डित जी ?" ऊदांबाई ने पूछा । पण्डित जी ने पूरा किस्सा बता दिया। सुन कर ऊदां सन्न रह गई।

फिर कुछ सोच कर बोली, "खैर, आप अपने राणा की आज्ञा का पालन कीजिए। अन्यथा स्वामी की आज्ञा की अवहेलना करने से आपका सर धड से जुदा हो सकता है। परन्तु मीरां भाभी को कुछ न बताना ।"

दूसरे दिन सुबह पण्डित उदयराम ने डटकर ठंडई चढ़ाई और बीजावर्गी से विष का प्याला लेकर मीरां के कक्ष में पहुँचे । ऊदांबाई और ललिता वहीं थीं ।

पण्डित जी ने रुद्ध कण्ठ से कहा, "बाई ! यह मां भवानी का चरणामृत है। ग्रहण करो।"

मीरां ने आगे बढ़कर कटोरी ले ली।

पण्डित जी उल्टे पैर वापस लौटे। उनके दिमाग में ठंडई का सरूर चढ़ने लगा। मीरांबाई किस तरह विष का प्याला पी रही होगी, इसका चित्र उनके दिमाग में उभरने लगा। वे बाहर कुछ क्षण उसी तरह स्तब्ध खडे रहे, फिर विक्षिप्त की तरह दौडते हुए चिल्लाने लगे, "मैं हत्यारा हूँ, मैं हत्यारा हूँ, हा... हा.. हा।"

सैनिकों ने उन्हें पकड लिया। स्त्रियाँ बाहर निकल कर देखने लगीं । पण्डित जी सैनिकों से अपने को छुडाते हुए जोर- जोर से कहते जा रहे थे, "हां, हां, मैं हत्यारा हूँ। मैंने

मातास्वरूपा मीरांबाई की हत्या कर दी है। उस पापी बीजा- वर्गी ने मुझे विष का प्याला दिया और में वह माता मीरांबाई को दे आया। हाय हाय अब तक वे मर भी चुकी होंगी। हाय ! मैंने अपनी मां की, देवी की, भगवान कृष्ण की राधा की हत्या कर दी है। हाय, हाय, हाय।"

बीजावर्गी ने सुना तो वह भाग कर अपने कक्ष में छुप गया। राणा बाहर निकल कर आए। उन्होंने सैनिकों को इशारा किया और सैनिकों ने पण्डित जी को ले जाकर काल-कोठरी में बन्द कर दिया।

उसी दिन दोपहर ढलते-ढलते मेवाङ भर में खबर फैल गई कि राणा विक्रमादित्य के कहने पर बीजावर्गी ने पण्डित उदय- राम के हाथ मीरां को मारने के लिए विष का प्याला भेजा। मीरां ने उसे भवानी का चरणामृत समझकर पी लिया और वह मर गई।

फिर यह खबर तेजी से फैली कि मीरांबाई मरी नहीं। उनके गिरधर गोपाल ने उस विष को अमृत बना दिया और मीरां पीकर पहले से भी अधिक स्वस्थ हो गई है।

वास्तव में मीरां मरी नहीं थी।

११

इस योजना की विफलता से राणा विक्रमादित्य का क्रोध और भी बढ़ गया। पण्डित उदयराम के पागलों की भाँति चिल्लाने और बीजावर्गी के अपनी योजना में असफल होने से राणा ही अधिक बदनाम हो रहे थे। वे बार-बार सोच रहे थे कि यदि वे सीधे मीरां को तलवार के घाट उतार देते तो सम्भवतः बदनामी इतनी न फैलती जितनी विष भेजने से फैली। लेकिन विष का सुझाव तो बीजावर्गी ने दिया था। कहाँ है वह मूर्ख, अभी उसे तलवार के घाट उतारता हूँ।

महाराणा के क्रोध को बीजावर्गी जानता था। उसे मालूम था कि अब उसकी खैर नहीं है। वह सीधे राजमाता के पास गया और 'मुझे बचाओ, मुझे बचाओ, राजमाता' कहता हुआ उनके चरणों में गिर पड़ा।

राजमाता सब कुछ सुन चुकी थीं और महाराणा की योजना की असफलता पर दुखी भी थीं। उन्होंने सेविका को राणा विक्रमादित्य को बुलवाने भेजा।

राजमाता की आज्ञा सुन कर राणा विक्रमादित्य अन्तःपुर पहुँचे। वहाँ राजमाता के चरणों में बीजावर्गी का बैठा देख उनका क्रोध फिर बढ़ गया और उन्होंने तेजी से म्यान से तलवार निकाल ली। राजमाता ने हाथ उठा कर राणा को शान्त होने

को कहा। महाराणा ने सिर झुका कर तलवार म्यान में डाल दी और राजमाता को प्रणाम कर एक ओर खडे हो गए।

राजमाता ने राणा से कहा, "यह बीजावर्गी तुम्हारा ही शुभचिन्तक है, राणा ! इसने जो कुछ किया, तुम्हारी आज्ञा से किया और तुम्हारे हित के लिए किया। फिर इस पर क्रोध क्यों?"

"मुझे चारों ओर बदनाम किया जा रहा है, राजमाता !" विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "एक स्त्री को इस तरह धोखे से मारने का प्रयत्न हमारे कुल में कभी भी किसी ने नहीं किया। उदयराम पागल हो गया है। उसने चारों ओर बात फैला दी है।"

"पर अब तो वह तुम्हारी कैद में है, न ? तो उसका मुँह बन्द क्यों नहीं कर देते ?" राजमाता ने राजघरानों में प्रचलित चिर- परिचित संकेत करते हुए कहा, "और जहाँ तक एक स्त्री को धोखे से मारने का प्रश्न है, राजघराने का सम्मान और राजकुल की मर्यादा बनाए रखने के लिए एक नहीं यदि हजारों स्त्रियों की भी आहुति देनी पडे, तो राणा को पीछे नहीं हटना चाहिए।" 'राजकुल की मर्यादा' शब्द सुनते ही महाराणा तन कर खडे हो गए। अनजाने ही उनका हाथ फिर तलवार की मूठ पर चला गया। बीजावर्गी आश्वस्त होकर बैठ गया।

"तो मुझे क्या आज्ञा है, राजमाता ?" राणा ने पूछा। "यदि एक प्रयत्न असफल हो जाए तो निराश होकर अपने कक्ष में ग्रुप कर बैठ जाना राणाओं की परम्परा नहीं है। तुम्हारे पिता श्री महाराणा जी के शरीर पर तो अपने देश की रक्षा करते समय अस्सी घाव लगे थे, और उन्होंने उफ तक नहीं की थी," राजमाता ने कहा और राणा सांगा की स्मृति में उनकी

आँखें सजल हो उठीं।

राणा विक्रमादित्य माता के इन वचनों से द्रवित हो उठे। उन्हें प्रोत्साहन भी मिल गया था। वे राजमाता के चरण क्रू कर बाहर निकल आए।

तब र। जमाता ने बीजावर्गी से कहा, "उठ रे मूर्ख, जा अपने राणा के पास। अब वह तेरी हत्या करके पाप का भागी नहीं बनेगा।"

बीजावर्गी ने राजमाता को प्रणाम किया और साधे राणा के कक्ष की ओर चल दिया।

अन्दर उसने देखा कि राणा विक्रमादित्य अपने आसन पर दोनों हाथ टेक कर पीछे की ओर झुके बैठे हैं और आँखें बन्द कर किसी गहरी चिन्ता में निमग्न हैं। बीजावर्गी उनके निकट जाकर धरती पर बैठ गया।

काफी देर बाद राणा ने आँखें खोलीं और निकट ही बीजा- वर्गी को बैठा देख कर बोले, "इस अपयश से बचने का कोई उपाय खोजो बीजावर्गी ! हमारी असफलता ने तो जनता की सहानुभूति मीरांबाई के प्रति जगा दी है।" यह कह कर उन्होंने फिर आँखें बन्द कर दीं, मानों फिर किसी गम्भीर विचार में खो गए हों।

बीजावर्गी को मौका मिल गया। उसकी आँखें चमक उठीं। उसने अपनी आवाज को भरसक करुण बनाते हुए कहा, "अब श्रन्नदाता के सामने मैं मुँह दिखाने योग्य नहीं रह गया। अच्छा होता यदि राणा की तलवार से मेरा उद्धार हो जाता। लेकिन लगता है माँ भवानी ने मुझे अन्नदाता की सेवा का एक और अवसर प्रदान किया है।"

महाराणा ने आँखें खोल कर बीजावर्गी की ओर गौर से देखा।

बीजावर्गी ने उनके चरण पकड़ कर कहा, "माँ भवानी की सौगन्ध, केवल एक अवसर और।"

"अच्छा, जाओ," महाराणा ने उसी तरह निलिप्त हो कर कहा।

बीजावर्गी सीना फुलाता हुआ बाहर चल दिया।

शाम हो चली थी और महल में दिए जलाए जाने लगे थे। बीजावर्गी ने महाराणा की एक विश्वस्त दासी को बुलाया और कोने में रखी एक बन्द पिटारी की ओर इशारा करके कहा, "देख, इस पिटारी में शालिग्राम जी की मूर्ति है। इसे मीरांबाई को दे श्र। कहना कि महाराणा जी उदयराम वाली घटना से अत्यन्त दुखी और लज्जित हैं, आप से क्षमा चाहते हैं और इसी लिए उन्होंने अपनी पिछली भूल का प्रायश्चित करने के लिए भेंट स्वरूप शालिग्राम जी की यह मूति भेजी है।"

दासी ने अविश्वास से बीजावर्गी की ओर देखा और फिर 'जो आज्ञा' कह कर पिटारी लेकर मीरांबाई के कक्ष की ओर चल दी।

मीरांबाई के कक्ष का द्वार बन्द था। चारों ओर पहरा लगा हुआ था। कक्ष के भीतर मीरां करुण स्वर में गा रही थी :

सास लड़ै, ननद खिजावे, राणा रहया रिसाई। पहरो भी राख्यो, चौकी भी बैठा दियो, ताला दियो जड़ाय ।।

दासी ने पहछेदार से द्वार खुलवाया और जाकर महाराणा का सन्देश कह सुनाया। मीरां को यह जान कर बहुत प्रसन्नता हुई कि महाराणा अब उनसे अप्रसन्न नहीं है। उन्होंने पिटारी एक ओर रखवा ली और नहाने-धोने चली गई, ताकि नहाने के

बाद वे शालिग्राम जी की मूर्ति मन्दिर में प्रतिस्थापित कर उसकी पूजा करें।

परन्तु ललिता को सन्देह हुआ। सुबह चरणामृत के स्थान पर विष भेजने की घटना के समय वह कमरे में ही थी। उसे किसी प्रकार से भी विश्वास नहीं हो रहा था कि राणा विक्रमा- दित्य इतनी जल्दी बदल जाएंगे। वह एक सच्ची सेविका और माँ की तरह मीरां की रक्षा कर रही थी। उसका सदैव प्रयत्न रहता कि मीरां को कोई कष्ट न हो। उसे यह भी पता लग चुका था कि सुबह विष की घटना के बाद महाराणा को राज- माता ने बुलाया था और तब महाराणा ने बीजावर्गी की चूक क्षमा कर दी थी। अब राणा इतनी जल्दी बदल जाएंगे, यह बात उसके गले से नहीं उतर पा रही थी। उसे सन्देह हो रहा था कि राणा जी ने अवश्य ही कुछ जाल रचा है।

मीरां नहा-धो कर वापस कक्ष में आकर ललिता से बोलीं, "चलो सखि ! मन्दिर के आले में आज भगवान शालिग्राम जी की मृत्ति की स्थापना करें। हमारे राणा जी भी कितने अच्छे हैं कि उन्होंने हमारे लिए शालिग्राम जी की मृत्ति भेजी है। लाओ जरा देखूं तो।"

यह कह कर मीरांबाई पिटारी की ओर बढ़ीं। लेकिन ललिता ने बीच में ही टोक दिया, "नहीं बाई ! पिटारी वहीं जाकर खोलेंगे। गिरिधर गोपाल के सामने।"

"हाँ, ठीक कह रही हो, चलो," मीरां ने कहा और मन्दिर की ओर चल दी। ललिता पिटारी ले कर उसके पीछे हो ली। मीरां के मन्दिर पहुंचते ही पाँच-छः स्त्रियाँ भी चली आई।

सब ने गिरिधर गोपाल की मूर्ति के आगे सिर टेका और एक ओर बैठ गई।

ललिता ने कहा, "बाई ! मैं आले को लीप दूँ, फिर शालिग्राम जी को वहाँ रखना।"

"अच्छा।" मीरां ने स्वीकृति से सिर हिलाया।

ललिता ने आला लीपा और फिर आकर पिटारी को खोला। पिटारी खोलते ही वह हकबका कर एक ओर हट गई। अन्य स्त्रियाँ भी अपनी-अपनी जगह से घबरा कर उठ बैठीं और चिल्लाई "साँप, साँप।"

"क्या है, कहाँ है साँप ?" मीरां ने पूछा और तभी उन्हें दरवाजे से वाहर जाता हुआ साँप दिखाई दिया। वे समझ गईं कि राणा ने पिटारी में रख कर ही भेजा होगा।

उन्होंने पिटारी में झाँक कर देखा, उसमें शालिग्राम की मृत्ति और एक हार पङा था। उन्होंने मृत्ति निकाल कर आले में रख दी और हार गिरिधर गोपाल के गले में पहना दिया। फिर सब ने शान्त मन से भजन-पूजा की और अपने-अपने कक्ष में लौट गईं।

महल के कुछ कक्षों में महाराणा द्वारा साँप भेजने के बारे में फुसफुसा कर बातें होने लगीं। सेवकों को भी कुछ-कुछ आभास मिल गया और रातों रात सारे राजमहल में यह बात फैल गई कि महाराणा ने मीरांबाई को मारने के लिए पिटारी में साँप भेजा, परन्तु सौभाग्य से वे बच गईं। फिर यह भी खबर फैली कि पिटारी में भेजा गया सांप मीरां की भक्ति के कारण शालिग्राम बन गया।

महाराणा भी समाचार सुनने को आतुर थे। जब उन्हें पता

चला कि मीरां इस बार भी बच गई, तो वे फिर मन मसोस कर रह गए। वे बड़ी देर तक दोनों हाथ पीछे बाँधे कमरे के चक्कर काटते रहे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें।

१२

इसके बाद मीराँबाई पर जो भी अत्याचार होते, उसकी सूचना चारों ओर फैल जाती। विष और सांप की घटनाएं अनेक रूपों में मेवाङ से बाहर तक फैल गई। कोई इसे मीरां का सौभाग्य समझता और कोई भगवान कृष्ण का चमत्कार। मीरां के बारे में अनेक किम्वदन्तियां फैलने लगीं।

बात फैलते-फैलते मेङते में मीरांबाई के चाचा राव वीरमदेव तक पहुंची। राव वीरमदेव के पुत्र जयमल बङे धर्मप्राण व्यक्ति थे। वे अभी युवक ही थे, परन्तु भगवान कृष्ण पर उनकी इतनी भक्ति हो गई थी कि लोग उन्हें भक्त जयमल कहने लगे थे।

उन्होंने जब मीरां पर अत्याचार की बातें सुनीं तो उन्होंने अपने पिता राव वीरमदेव से आग्रह करके मीरांबाई को मेङते बुलाने के लिए दो ब्राह्मण भिजवा दिए।

परन्तु महाराणा विक्रमादित्य नहीं चाहते थे कि मीरां महलों से कहीं बाहर जाए। वे जानते थे कि मीरां पर अत्याचार करके वे बाहर बहुत बदनाम हो गए हैं; लेकिन साथ ही उनका विचार था कि जब तक मीरां उनके महल में है, तब तक वे अधिक बदनाम नहीं होंगे और जिस दिन मीरां कहीं बाहर चली जाएगी उसी दिन से सब उन पर थू-थू करने लगेंगे। और उन्हें

सबसे अधिक भय राव वीरमदेव से था। अब वहीं से मीरां के लिए बुलावा आया हुआ था। महाराणा किसी भी कीमत पर मीरां को मेङते नहीं भेजना चाहते थे। उन्हें डर था कि यदि राव वीरमदेव ने मीरां पर होने वाले अत्याचार सुन लिए तो उन्हें बहुत नीचा देखना पङेगा। हो सकता है कि राव वीरमदेव मीरां पर किए गए अत्याचारों का बदला लेने के लिए मेवाङ पर आक्रमण कर दें।

राणा विक्रमादित्य परामर्श लेने राजमाता के पास पहुंचे। राजमाता ने कहा, "जाओ, उन ब्राह्मणों से कह दो कि वे राव वीरमदेव से कह दें कि राजाओं की धीयङीं (बेटियां) विवाह के बाद फिर लौट कर मायके नहीं जातीं ?"

महाराणा ने जाकर ब्राह्मणों से यही कह दिया। बेचारे ब्राह्मण अपना-सा मुंह ले कर लौट गए।

लेकिन इससे राणा विक्रमादित्य को शान्ति नहीं मिली। वे मीरां से सदैव के लिए छुटकारा पाने का उपाय सोचने लगे। जब उनकी समझ में कुछ नहीं आया, तब उन्होंने फिर बीजावर्गी से सलाह ली।

"बीजावर्गी, मैं तुम्हें मालामाल कर दूंगा। लेकिन ध्यान रहे अब के जो तरीका अपनाओ, वह अचूक हो," महाराणा ने उससे कहा, "हम पहले ही काफी बदनाम हो चुके हैं। अब फिर तुम असफल हुए तो संसार हमें जीने न देगा और तब जानते हो तुम्हें क्या पुरस्कार मिलेगा ?"

यह कह कर राणा विक्रमादित्य ने तलवार की मूठ पर हाथ रख दिया।

"अन्नदाता ! विश्वास कीजिए अब के मेरा निशाना कदापि खाली नहीं जाएगा। मैं स्वयं अपने ही हाथों यह काम करूंगा," बीजावर्गी ने कहा और फर्शी सलाम झुकाया।

उसी दिन रात के तीसरे पहर.. चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। सब लोग गहरी नींद में सोए हुए थे, केवल कभी-कभी पहरेदारों की आवाज सुनाई दे जाती थी या फिर कभी-कभी आवारा कुत्तों के लड्ने तथा भौंकने की।

मीरां के कक्ष से कुछ ही दूर खम्भे की आड में बीजावर्गी और राणा खडे थे। चार हट्टी-कट्टी पहरेदारनियां धीमे-धीमे आगे बढ़ीं। उन्होंने श्राहिस्ते से मीरां के कक्ष का द्वार खोला। दो ने लपक कर ललिता को और दो ने मीरां को दबोच लिया और उनके मुँह में कपङा ठूंस दिया। फिर उन्होंने उनके हाथ- पैर बांध दिए। एक पहरेदारिन ने मीरां को और दूसरी ने ललिता को कंधे पर उठा लिया और द्वार से बाहर निकल आई।

बीजावर्गी और महाराणा भी खम्भे की आड से निकल कर उनके पास आ गए।

"शाबाश, जल्दी चलो," महाराणा ने फुसफुसा कर कहा और वे सब मन्दिर से होते हुए महल के अहाते की दीवार के निकट पहुंच गए। वहां पहले ही से रस्सी की सीढ़ी लटकी हुई थी। सब से पहले वीजावर्गी चढ़ कर ऊपर पहुंच गया। फिर पहली पहरेदारिन मीरां को कंधे पर उठाए सीढ़ियाँ चढ़ी और दूसरी ने उसे सहायता दी। इसी प्रकार तीसरी पहरेदारिन ललिता को लेकर चढ़ी और चौथी ने उसे सहायता दी। सबसे पीछे महाराणा चढ़े।

दीवार पर चढ़ कर वे सब फिर दूसरी ओर उतरे। "इधर, इधर," बीजावर्गी ने आहिस्ते से कहा।

सब उसके दिखाए मार्ग पर चलने लगे। कुछ दूर चलने के बाद बीजावर्गी एक कुएं के पास रुक गया। उसके साथ ही सब

रुक गए।

"बस इसी में," बीजावर्गी ने कुएं की ओर इशारा करके कहा।

छपाक....छपाक....अमावस की उस गहरी काली और मौन रात में कुएं के अन्दर दो आवाजें हुई और फिर सब कुछ शान्त हो गया। राणा ने गहरी सांस ली और लौटने लगे। बीजावर्गी और चारों पहरेदारिन भी खाली हाथ उनके पीछे पीछे लौट आईं। फिर उसी तरह रस्सी की सीढ़ियों की सहायता से वे सब महल के अहाते में आ गए। बीजावर्गी ने रस्सी खोल ली और उसे पहरेदारिनों को दे दिया। राणा ने अपनी जेब से मुट्ठी भर जवाहरात निकाले और उन्हें पहरेदारिनों के हवाले कर दिया। पहरेदारिनों ने जमीन तक झुक कर प्रणाम किया और धीमे से 'अन्नदाता की जय हो!' कह कह चली गईं।

महाराणा का सारा शरीर शिथिल हो गया था। वे बीजा- वर्गी के कंधे का सहारा लेकर अपने कक्ष तक पहुंचे और सीधे पलंग पर लेट गए।

...रात बीती, सारे महल में उषाकाल की लाली छा गई, चिड़ियां चहचहाने लगीं। अचानक राणा विक्रमादित्य की आंखें खुल गईं। रात के जागरण के कारण वे लाल हो रही थीं।

वे उठ बैठे। एक विचित्र सी वैचैनी उनके तन-मन पर छा गई थी। वे झरोखे के पास आकर बैठ गए। जाने क्यों उनकी आंखें बरबस मन्दिर पर टिक गईं। यकायक उन्होंने देखा कि मीरां और ललिता नित्य प्रति की भांति अपने कक्ष से निकल कर मन्दिर की ओर चली जा रही हैं। वे चौंक कर पीछे हट गए। उन्होंने दोनों हाथों से जोर-जोर से आंखें बढ़ कर मन्दिर के अन्दर की ओर देखा। मलीं और फिर आगे कहीं कुछ न था। वे

आश्वस्त हुए। उन्होंने सोचा कि यह केवल आंखों का धोखा था। परन्तु तभी मन्दिर के अन्दर से घण्टी बजने की ध्वनि सुनाई पडी। वे चौके- ऐसा कैसे हो सकता है? नहीं, वे नहीं हो सकतीं। उन्हें तो मैं अपने सामने कुएं में फिंकवा आया था. महाराणा सोचने लगे।

उन्हें लगा कि वे बेहोश हो कर गिर पडेंगे। वे अपने कक्ष में आकर अपने पलंग पर बैठ गए और दोनों हाथ फैला कर पलंग की बांहों पर टिका दिए। दासी आई तो उससे बोले, "जाओ, नीचे जाकर देखो कि मेडतिनी भाभी और उनकी दासी कुशल से हैं ?"

दासी चली गई और कुछ ही देर बाद लौट कर उसने बताया कि दोनों कुशल से हैं और मन्दिर में गिरिधर की आरती कर रही हैं।

"ठीक है, जाश्रो," राणा विक्रमादित्य ने दासी को बाहर जाने का इशारा किया और उसी तरह पीठ के बल धप से पलंग पर लेट गए। 'हे भगवान ! यह कैसा चमत्कार!' वे सोचने लगे, 'रात को तो उन्हें बाँध कर अपनी आँखों के सामने कुएं में फिकवाया था, फिर वे यहाँ कैसे ? क्या यह कोई अलौकिक माया है, भगवान कृष्ण ने क्या अपना चमत्कार दिखाया है, या कहीं वे जादूगरनी तो नहीं है ?'

...लेकिन बेचारे राणा को क्या मालूम था कि उस गहरी काली रात में भी कोई जटा-जूट धारी साधू छाया की तरह उनका पीछा करता हुआ कुएं तक पहुंच गया था और उनके वापस लौटते ही मीरां और ललिता को कुएं की उस गहराई से उबार लाया था।

और ये जटा-जूट घारी साधू और कोई नहीं, मीरां के वही गुरु रायदास जी थे, जो एक अदृश्य शक्ति के समान बराबर मीरां की रक्षा कर रहे थे।

१३

मीरां और ललिता को कुएं से बचाने के बाद दूसरे ही दिन भक्त रायदास जी सीधे मेड़ते पहुँचे और वहां राव वीरमदेव तथा उनके पुत्र जयमल जी को मीरां पर राणा विक्रमादित्य द्वारा किए जाने वाले नृशंस अत्याचारों की सभी घटनाएं सुनाईं। सुन कर राव वीरमदेव क्रोध से अंगारा हो गए । अत्या- चारी राणा विक्रमादित्य को दंड देने के लिए उनकी भुजाएं फड़क उठीं ।

उन्होंने भक्त रायदास जी से कहा, "महाराज, मैंने मीरांबाई को बुलाने के लिए दो ब्राह्मण भेजे थे, लेकिन राणा विक्रमादित्य ने कहला दिया कि राजाओं की धीयड़ों विवाह के बाद मायके नहीं जातीं। आप भी कोशिश कर देखें। मैं आपके साथ कहार, पालकी और सैनिक भेज देता हूँ। राणा से कहिए कि यदि राजाओं की धीयड़ी को राजरानियों की तरह रखा जाए तो उनके मायके लौटने की नौबत नहीं आ सकती, परन्तु यदि उन पर पाशविक अत्याचार किए जाएं तो फिर ससुराल नरक बन जाता है। राव वीरमदेव ने मीरांबाई को भी उसी नरक से छुटकारा दिलाने का प्रण किया है। आप हमारे रिश्तेदार हैं, अतः अभी निवेदन मात्र किया है, परन्तु यदि निवेदन की अवहेलना

हुई, तो वे यह याद रखें कि राव वीरमदेव की शिराओं में राव दूदा जी का रवत है। वह कभी भी खौल सकता है और तब परिणाम क्या होगा, शायद राणा इसका अनुमान अच्छी तरह लगा सकते हैं।"

भक्त रायदास जी राव वीरमदेव का यह संदेश लेकर दो पालकियाँ और कहार, ब्राह्मण तथा कुछ अंगरक्षकों के साथ चित्तौङ पहुँचे। वहां राणा विक्रमादित्य को राव जी का संदेश कह सुनाया। राणा सकपकाए, फिर क्रोधित हुए, बङबङाए, और फिर उन्होंने जाकर राजमाता से सलाह ली और अन्त में मीरांबाई को मेङते जाने की अनुमति दे दी।

महल की अनेक स्त्रियों को रोती-बिलखती छोङ, मीरां और ललिता पालकियों में सवार होकर भक्त रायदास जी के साथ मेङते रवाना हो गईं।

मेङता पहुँचने पर राव वीरमदेव ने राजपरिवार तथा नगर- निवासियों सहित मीरां का बङी धूमधाम से स्वागत किया। जयमल जी तो अपनी चचेरी बहन भक्त मीरांबाई को देख आत्म- विभोर हो उठे। उसी रात को १००१ साधुओं को भोजन कराया गया और दान-पुण्य किया गया।

इसके बाद राव दूदा जी के बनाए चतुर्भुज जी के मंदिर में प्रतिदिन भजन-कीर्तन होने लगा।

उधर मीरां के जाते ही मेवाङ पर मुसीबतों के पहाङ टूटने लगे। यह सम्वत् १५९१-९२ की बात है। गुजरात के बादशाह सुलतान बहादुरशाह ने चित्तौङ पर अचानक अक्रमण कर दिया और उसे चारों ओर से घेर लिया।

राणा विक्रमादित्य के छिछोरेपन से सभी दरबारी सामन्त रुष्ट थे। वे सदैव ही बीजावर्गी जैसे धूर्तों और खुशामदियों से से घिरे रहते थे। सुलतान बहादुरशाह के आक्रमण को वे न रोक

सके। शत्रुओं की सेना जब किला तोड़कर भीतर घुसने लगी, तब राणा विक्रमादित्य की माता रानी हाडों ने कोई बचाव की सूरत न देख जौहर करने का निर्णय किया।

महल के आँगन में चन्दन, अगरु आदि की विशाल चिता सजाई गई। महल की सभी स्त्रियां अपने श्रेष्ठ वस्त्र-आभूषण पहने, सुहाग चिन्ह लगाए जौहर के लिए तैयार हो गईं।

रानी हाडों के पहुँचते ही चिता प्रज्वलित कर दी गई। पूरा आंगन स्त्रियों से भर गया। रानी हाडीं ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से 'जय भवानी' कहा और चिता में कूद पडीं। उसके बाद दूसरी रानी ने भी 'जय भवानी' कहा और चिता में कूद गई। इसके बाद एक-एक करके १३,००० स्त्रियां उस विशाल चिता की गगनचुम्बी लपटों में समा गईं।

इतिहास में यह जौहर 'दूसरा साका' के नाम से प्रसिद्ध है। चितौड़ पर सुलतान बहादुरशाह का अधिकार हो गया।

परन्तु इसके कुछ महीने बाद ही सुलतान बहादुरशाह और हुमायूं में युद्ध छिड़ गया, जिसमें सुलतान बहादुरशाह हार कर बापस गुजरात भाग गया। चित्तौड़ पर पुनः राजपूतों का अधि- कार हो गया और हुमायूँ ने विक्रमादित्य को फिर से चित्तौड़ के राजसिंहासन पर बैठा दिया।

राणा विक्रमादित्य इतनी बड़ी ठोकर खाने के बाद भी अपना स्वभाव न बदल सके। मेवाड़ के सरदारों से वह फिर दुर्व्यवहार करने लगे। खुशामदी और धूर्त व्यक्ति उनके विश्वासपात्र बनने लगे और सच्चे स्वामिभक्त उससे दूर रहने लगे। उनके मुंहलगे मुसाहिबों में कुंवर पृथ्वीराज की दासी पत्नी से पैदा बनवीर भी था, जो सम्बत् १५६३ में उन्हें धोखे से मार कर स्वयं राणा बन बैठा।

उसने विक्रमादित्य के छोटे भाई उदसिंह को भी मारना चाहा, परन्तु वह पन्ना धाय की अतुलनीय स्वामिभक्ति और त्याग से बच गया। पन्ना धाय ने उदयसिंह के स्थान पर अपने बेटे की बलि देकर उसे कुंभलमेर पहुँचा दिया।

बनवीर ने चितौड़ की गद्दी पर बैठते ही सरदारों पर अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया, परन्तु सब जानते थे कि बनवीर वर्णसंकर है, अतः सभी उससे घृणा करते थे। उसमें शासन करने की योग्यता भी नहीं थी। इसलिए सभी उससे रुष्ट थे और उसे गद्दी से हटाने की ताक में थे।

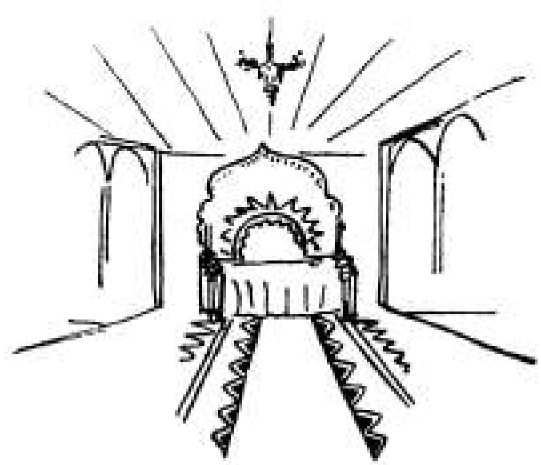

१४

अब मीरांबाई का प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैलने लगी। राज- स्थान की नारियां सुबह-शाम मन्दिरों और घरों में भगवान कृष्ण की पूजा करते समय मीरां के बनाए पद गातीं, दूर-दूर के धर्मपीठों और मठों के पण्डितगण, विद्वज्ज्ञन, तर्क शास्त्री, संत- महात्मा मीरांबाई के दर्शनों को आते और उनसे सत्संग करते। श्री आचार्य महाप्रभू वल्लभाचार्य जी तक तो उनकी प्रसिद्धि पहले ही पहुँच चुकी थी। चैतन्य महाप्रभू, गोस्वामी विठ्ठलनाथ आदि अनेक सन्त-महात्मा भी मीरांबाई का नाम अब आदर से लेते थे।

अनेक धर्म-सम्प्रदायी मीरां को अपने सम्प्रदाय में शामिल करने को उत्सुक रहते, लेकिन मीरां को केवल अपने गिरधर गोपाल पर श्रद्धा थी। किसी भी सम्प्रदाय की जो भी अच्छ बात होती, उसे वह ग्रहण कर लेतीं, परन्तु उस सम्प्रदाय दीक्षित न होतीं। वे केवल यही कहतीं :

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई। जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।।" महाप्रभु वल्लभाचार्य के अनुयायी जब मीरांबाई के आगे

भगवान कृष्ण की लीला का वर्णन करते, तो वे बड़ी तन्मयता से सुनतीं । कृष्ण कन्हैया की छेड़छाड़, राधा और गोपिकाओं का प्रेम... वृन्दावन का वह सम्पूर्ण दृश्य उनकी आंखों के आगे घूम जाता और वे गा उठतीं :

बसो मोरे नैनन में नन्दलाल ।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, अरुन तिलक दिए भाल।
मोहिनी मूरत सांवरी सूरत, नैना बने विसाल ।।

चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी जब मीरां को राधा के रूप में नाच कर महाप्रभु के पद सुनाते, तो मीरां भी अपने को एक गोपी समझ कर गा उठती :

मुरलिया बाजे जमुना के तीर ।
"मुरलि सुनत मेरो मन हर लीनो, चित धरत नहीं धीर ।।
कारो कन्हैया, कारी कमरिया, कारो जमुना को नीर ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, चरन कमल पै सीर ।।

जब कभी मीरां के घर कबीरपंथी संत आते और कबीर के पद सुनाते, तो मीरांबाई उनसे इतनी प्रभावित होतीं कि स्वयं भी उसी प्रकार के पद उनके कण्ठ से निकल पड़ते :

नैनन बनज बसाऊं री, जो मैं साहिब पाऊं री।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊं री ।।
और नाथ पंथियों को यह पद सुनाती :
जोगिया से प्रीत किए दुख होय ।
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी, जोगी मित न कोय ।।
राति दिवसं मोहि कल न परत है, तुम मिलियां बिन मोय ।

परन्तु जब वे अकेली होतीं तो केवल गातीं- 'मेरे तो गिरि- घर गोपाल दूसरो न कोई।' और जब नाचते-नाचते उनके अंग शिथिल हो जाते, नैनों से अश्रुधारा बह निकलती और मन में प्रिय-मिलन की उत्कट कामना मचल उठती तो बरबस गा उठतीं :

हे री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाने कोय।
घायल की गति घायल जाने कि जिन लागे होय।

इस प्रकार मोरांबाई रात दिन अपने गिरिधर गोपाल की आराधना में रत रहतीं। राव वीरमदेव की ओर से उन्हें हर प्रकार की पूरी स्वतन्त्रता थी और जयमल जी प्रायः उन्हीं के साथ रहते थे।

मीरां का जीवन कृष्णमय बीत रहा था। घर-घर उनके पद गाए जाने लगे थे। बाल-वृद्ध और स्त्रियाँ आकर उनके दर्शन करके अपने को धन्य मानतीं। उनके भजन सुनने दूर-दूर से श्रद्धालुगण आते और सायंकाल को कीर्त्तन के समय सैकडों स्त्री-पुरुषों की भीड़ इकट्ठी हो जाती। अनेक तीर्थ-स्थानों से धर्माचार्यों और मठाधीशों ने मीरां को अपने यहाँ आमन्त्रित किया। परन्तु वे मेड़ता से कहीं बाहर न जातीं, वहीं चतुर्भुज जी के मन्दिर में रहतीं।

मीरां की प्रसिद्धि सम्पूर्ण भारत में फैल गई। उनके बारे में अनेक किम्वदन्तियाँ प्रसिद्ध हो गई। कोई कहता, वे साक्षात् देवी हैं, जो भारतवर्ष में धर्म का प्रचार करने आई हैं; कोई उन्हें भगवान् कृष्ण की प्रिय गोपिका ललिता का अवतार मानते और कोई स्वर्ग की शापित देवी।

१५

इस प्रकार मीरांबाई की प्रसिद्धि कस्तूरी की गंध की तरह देश के कोने-कोने में फैलती चली गई, और उधर राजाओं के वैमनस्य और युद्ध से देश का इतिहास बदलता चला गया।

राव वीरमदेव और मालदेव के बीच पुराना वैमनस्य चला आ रहा था। बात यह हुई थी कि संवत् १५८५ में मालदेव के पिता राव गांगा जी और राजस्थान की एक छोटी-सी रियासत के राजा शेखा जी में युद्ध हुआ। शेखा जी को नागौर के शासक दौलतखाँ ने सहायता दी। दौलतखाँ का हाथी भाग कर मेड़ते चला आया, जहाँ राव वीरमदेव जी ने उसे पकड़ लिया। माल- देव ने हाथी माँगा लेकिन राव वीरमदेव ने देने से साफ इन्कार कर दिया। इससे दोनों में वैमनस्य हो गया। बाद में राव गांगा जी के कहने पर वीरमदेव जी ने हाथी लौटा दिया, परन्तु माल- देव अपने अपमान को न भूल सका।

जब सम्वत् १५९५ में राव वीरमदेव ने अजमेर जीता, तब मालदेव ने उन्हें कहला भेजा कि उसे अजमेर दे दिया जाए। राव वीरमदेव के इन्कार कर देने पर मालदेव ने मेड़ते पर चढ़ाई कर दी।

मेड़ते में भीषण युद्ध शुरू हो गया। राव वीरमदेव जी को

अपनी हार स्पष्ट दिखाई देने लगी। हताश होकर वे अजमेर भागने की तैयारी करने लगे।

मीरां इन सब बातों से विरक्त अपनी आराधना में ही लीन रहती थी। परन्तु जब मेड़ते में भीषण मारकाट होने लगी तब वह भी विचलित हो उठी।

इसी अवसर पर रमते योगी के समान रायदास जी मेड़ते आ पहुँचे। उन्होंने मीरां से कहा, "बेटी! मेड़ता में रक्तपात हो रहा है। राव वीरमदेव जी मेड़ते की समस्त स्त्रियों, बच्चों और अपने सभी सरदार-सामन्तों के साथ कल प्रातः अजमेर कूच कर जाएंगे। परन्तु तुम्हारा जाना निरर्थक है। यह तो अभी युद्ध का आरम्भ है, आगे पता नहीं क्या-क्या हो। अच्छा हो कि तुम वृन्दावन यात्रा पर चली चलो। अनेक विद्वज्जन और साधू-संत वहां तुम्हारे दर्शनों के लिए उत्सुक हैं।"

मीरां ने उत्तर दिया, "ठीक है गुरुदेव ! मुझे किसी की जय-पराजय से क्या सरोकार। वृन्दावन जाने की मेरी भी वर्षों से बड़ी अभिलाषा है। मैं आज ही का का जी से अनुमति मागूंगी।"

"हाँ, श्राज ही तुम अनुमति ले लो," रायदासजी ने कहा, "कल पौ फटने से पहले ही हम प्रस्थान कर देंगे।"

तब मीरां राव वीरमदेव के पास जाकर बोलीं, "काका जी ! मुझ हतभागिनी को कहां-कहां ले जाओगे। मैं तो आप पर भार ही बनकर रहूँगी। अच्छा हो यदि आप मुझे वृन्दावन यात्रा की अनुमति दे दें।"

राव वीरमदेव युद्ध की परिस्थिति से भली-भाँति परिचित थे और यह नहीं चाहते थे कि इस युद्ध के कारण मीरां को किसी भी प्रकार से कष्ट पहुँचे। उन्हें मीरां का सुझाव बहुत पसन्द आया। उन्होंने उन्हें वृन्दावन जाने की अनुमति दे दी।

दूसरे दिन सुबह होने में अभी कुछ देर बाकी थी। पूरब में ऊषा की लाली छायी हुई थी। मीरां अपने गुरु रायदास जी, ललिता तथा कुछ अन्य भक्तों के साथ भगवान चतुर्भुज जी को अन्तिम बार प्रणाम कर के वृन्दावन की यात्रा पर चल दी। जयमल जी बहुत चाहते हुए भी, युद्ध के कारण, उनके साथ न जा सके।

भगवान भास्कर की पहली किरण मेड़ते पर पडी। प्रजाजन अपने दैनिक कार्यों में लग गए। कुछ लोगों ने देखा कि मेड़ते से वृन्दावन की ओर जाने वाले मार्ग पर कुछ स्त्री-पुरुषों की एक लम्बी कतार चली जा रही है और मीरां के एक पद के समवेत किन्तु धीमे स्वर भोर की बेला पवित्रवायुमंडल में गूंज रहे हैं.....

'मोहे लागी लगन हरिचरनन की।'

१६

मीरांबाई की वृन्दावन-यात्रा की सूचना देश भर में बडवाग्नि की तरह फैल गई। वे अभी डाकोर जी ही पहुंची थीं कि वृन्दावन-वासियों को सूचना मिल गई। वे धूमधाम से मीरां के स्वागत की तैयारी करने लगे।

मीरांबाई दो दिन डाकोर जी में विश्राम करके वृन्दावन की ओर चलीं। साधू-संत तथा वृन्दावन के नागरिकों ने नगर से तीन-चार मील आगे बढ़ कर स्वागत किया। वहां से वे सब मीरांबाई के पद गाते हुए वृन्दावन की ओर बढ़े।

वृन्दावन पहुंचते ही वहाँ की समस्त जनता मीरांबाई के दर्शनों के लिए उमङ पडी। भक्तजन मीरां के पद गाते जा रहे थे और जनता मीरां के पथ पर फूल बरसा रही थी।

वृन्दावन में कभी भी किसी साधू-संत का इतना भव्य स्वागत नहीं हुआ था।

धर्मप्राण जनता और संतों के बीच घिरी हुई मीरां अनजाने ही उसी स्थान की ओर बढ़ने लगी जहाँ बहुत वर्ष पहले वह एक कुटिया में रही थी। उस कुटिया में अब एक वृद्धा भक्तिन रहती थी। उसी वृद्धा की तरह कुटिया भी जर्जर हो गई थी। बुढ़िया ने दरवाजे पर आकर मीरां का स्वागत किया

मालूम था कि कई वर्ष पहले मीरांबाई इसी कुटिया में निवास करती थीं और अब वह फिर आने वाली हैं। इतने विशाल जनसमूह को देख कर और मीरां के पद सुन कर वह समझ गई कि उस भीड़ के आगे निलिप्त भाव से पग बढ़ाती हुई मीरां ही हैं।

दूसरे दिन मीरां जीव गोस्वामी से मिलने गईं। वे चैतन्य महाप्रभू के परम प्रिय शिष्य थे और अनेक धर्मग्रन्थों की रचना कर चुके थे। मीरां ने उनके लगभग सभी ग्रन्थों का अध्ययन किया था और उनके सदुपदेशों से अ यधिक प्रभावित थीं ।

जीव गोस्वामी बाल ब्रह्मचारी थे और स्त्रियों को अपनी कुटिया के निकट आने तक न देते थे। उनके शिष्यों ने मीरां और अन्य भक्तिनों को आते देखा तो दौड़ कर गोस्वामी जी को इसकी सूचना दी ।

गोस्वामी जी ने तत्काल कुटिया के द्वार पर परदा डलवा दिया और शिष्यों से कहा, "जाओ, मीरांबाई से कह दो कि मैं बाल ब्रह्मचारी हूं। मैं प्रकृति (नारी) का मुँह तक नहीं देखता ।" शिष्यों ने दौड़ कर मीरां को गोस्वामी जी का सन्देश सुनाया । मीरां तब तक कुटिया के निकट पहुंच चुकी थीं। उन्होंने शिष्यों से कहा, "जाओ अपने गुरु जी से कहो कि, महाराज, आप अभी तक प्रकृति-पुरुष के भेद में पड़े हुए हैं? आपको तो समदर्शी होना चहिए।"..

शिष्यगण मीरां का सन्देश सुनाने द्वार का परदा उठा कर कुटिया के अन्दर चले गए। अभी वे बाहर भी न आ पाए थे कि मीरां परदे के बिल्कुल निकट आकर खड़ी हो गईं।

उन्होंने वहीं से जीव गोस्वामी को सम्बोधित कर के कहा,

"गोस्वामी जी ! श्रीमद्भागवत में लिखा है, "वासुदेव पुमानेकः स्त्रीमयमितरज्ञगत्" और तब भी आप अपने को पुरुप कहते हैं। श्री गिरिधर जी के सिवा ब्रज में अन्य पुरुष भी है, यह मुझे आज मालूम हुआ ।"

यह सुन कर श्री जीव गोस्वामी परदे को हटाकर बाहर आ गए। मीरां उन्हें प्रणाम करने झुकीं तो वे भी मीरां को प्रणाम करते हुए बोले, "देवी ! चैतन्य महाप्रभू का शिष्य होते हुए और वृन्दावन में रहते हुए भी मेरे जो ज्ञान-चक्षु नहीं खुल पाए थे, वे आज तुमने खोल दिए ।"

फिर सब वहीं पर बैठ गए। गोस्वामी जी ने चैतन्य महाप्रभू का पद सुनाया, फिर ललिता तथा अन्य भक्तिनों ने मीरां का और फिर काफी देर तक वहीं पर भजन-कीर्त्तन होता रहा ।

आबाल ब्रह्मचारी महापण्डित जीव गोस्वामी जी से उनका प्रण तुड्वाने की कथा वृन्दावन भर में फैल गई। सभी को विश्वास हो गया कि इससे पहले भी उन्होंने मीरां के बारे में जो चमत्कार सुने हैं, वे सच्चे हैं। इसके बाद गोविन्द जी, बाँके- बिहारी जी, मदनमोहन जी आदि अनेक मन्दिरों के पुजारी मीरांबाई की कुटिया में जा कर उन्हें अपने मन्दिरों में भजन-कीर्तन करने की प्रार्थना करने लगे। मीरां बडी प्रसन्नता से उनका निमन्त्रण स्वीकार करतीं और तब मन्दिर में भक्तजनों की भीड लग जाती और रात भर कीर्तन चलता ।

मीरां के भजन और कीर्तन इतने प्रसिद्ध हो गए कि मथुरा के पण्डितगणों की प्रार्थना पर मीरांबाई को मथुरा भी जाना पडा। वहाँ वे कुछ दिन रह कर लौट आईं।

इधर वृन्दावन और उसके आस-पास सर्वत्र मीरां की चर्चा थी और उधर सम्वत् १५९७ में उदयसिंह जी का चित्तौड पर

अधिकार हो गया। उनके बडे भाई महाराणा विक्रमादित्य के राज्यकाल में मीरांबाई पर जो अत्याचार हुए थे, उससे वे अच्छी तरह परिचित हो चुके थे। वे उससे बहुत लज्जित रहते। समस्त मेवाड के लोग भी बार बार यही कहते कि राणा विक्रमादित्य ने साक्षात् देवी पर जो अत्याचार किए उसी का उन्हें फल मिला।

अब महाराणा उदयसिंह मीरांबाई को वापस चित्तौड बुलाने के लिए आतुर हो उठे। उन्होंने उन्हें बुलाने के लिए अपने खास मंत्री और ब्राह्मणों के साथ पालकियाँ भिजवाई।

मन्त्री ने मीरां से महाराणा उदर्यासह का सन्देश सुनाया और धरना देखकर बैठ गया। मीरां ने चित्तौड वापस जाने से साफ इन्कार कर दिया। तब बहुत बहस के बाद मन्त्री वापस लौटा।

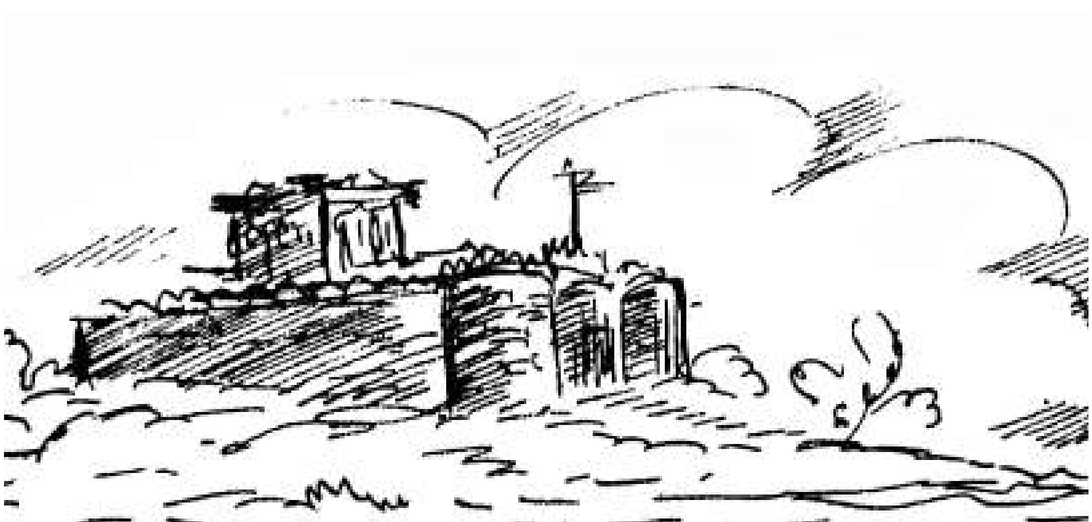

१७

उधर मालदेव ने जिस दिन मेङ्ता पर अधिकार किया, उसी दिन से राव वीरमदेव चिन्तित थे कि किस प्रकार वे मेङ्ता वापस लें। मेङ्ता पर मालदेव का अधिकार होने से पूर्व ही वीरमदेव अजमेर भाग गए थे। परन्तु मालदेव ने उन्हें वहाँ भी नहीं छोङा। मेङ्ता पर पूरी तरह अधिकार कर लेने के बाद उसने अजमेर पर भी आक्रमण कर लिया। तब राव वीरमदेव अजमेर छोङ कर अपने परिवार सहित रायमल शेखावत के यहाँ एक वर्ष तक रहे।

इसके बाद उन्होंने अपने परिवार को रणथम्भौर के किले में सुरक्षित छोङ कर, शेरशाह की सहायता से संवत् १६०० में मालदेव पर आक्रमण किया और विजयी हुए।

मेङ्ता में प्रवेश कर वीरमदेव जी धूमधाम से गद्दी पर बैठे। अपने पुराने लोकप्रिय राव के फिर वापस आने से वहाँ की प्रजा बहुत प्रसन्न हुई और उसने तीन दिन तक मेङ्ता में जशन मनाया।

एक दिन शाम को राव वीरमदेव ने अपने पुत्र जयमल जी को बुला कर कहा, "बेटा! मीरां को वृन्दावन गए काफी समय हो गया है। अब हमें पुनः मेङ्ता मिल गया है और युद्ध के

बादल छंट गए हैं। जानो, अपनी बहन मीरां को वृन्दावन से बुला लाओ।"

जयमल जी दूसरे ही दिन पालकियाँ और कहार लेकर वृन्दावन रवाना हो गए।

वृन्दावन पहुँच कर उन्होंने मीरां से मेड़ते चलने को कहा। मीरां ने उत्तर दिया, "भैया ! इस सहस्त्र मन्दिरों की नगरी में मेरा मन रम गया है। में मेड़ते जाकर क्या करूंगी ? मैं तो अपने गिरिधर गोपाल की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही हैं। वे जिस दिन बुलायेंगे, चली जाऊँगी। तुम जाओ। काका जी से मेरा प्रणाम कह देना और कहना कि मीरां तो अपने गोपाल की चाकर है और वृन्दावन में उन्हीं की चाकरी कर रही है।"

जयमल जी ने बहुत आग्रह किया, परन्तु मीरां न मानीं । जयमल जी काफी दिन तक वहीं रहे और मीरां के साथ मन्दिरों में जाकर कीर्तन भी करते रहे। उनका मन भी वहीं रमता जा रहा था, परन्तु साथ ही वे लगातार मीरां से मेड़ते लौटने का आग्रह भी करते जा रहे थे ।

तब एक दिन मीरां ने ललिता से एकान्त में कहा, "सखि ! चलो, यहाँ से द्वारिका चलें। यहाँ मेवाड़ और मेड़ता, दोनों स्थानों से बुलावे आ रहे हैं। मैं उन्हें दुखी नहीं करना चाहती। और फिर वह छलिया कृष्ण भी तो वृन्दावन छोड़ कर द्वारिका जा बसे थे । सम्भवतः वे वहीं मिल जाएं ।"

और दूसरे दिन रात ढलने से पहले ही मीरां तथा ललिता वृन्दावन छोड़ कर द्वरिका की ओर चल पड़ीं।

सवेरा होने पर जयमल जी उन्हें कुटिया में न देख कर बहुत

दुखी हुए । वृन्दावन वासियों को भी जब पता चला कि मीरां चली गईं, तब उन्हें बहुत दुख हुआ। जयमल जी दुखी मन होकर वापस मेड़ते लौट गए।

संवत् १६०० की फाल्गुन में ही राव वीरमदेव की मृत्यु हो गई और तब जयमल जी मेड़ते के स्वामी बने।

तब तक देश भर में यह खबर फैल चुकी थी कि मीरांबाई वृन्दावन छोड़ कर द्वारिका चली गई हैं।

इसके बाद द्वारिका ही भजन-कीर्तन और साधु-संतों के समागम का प्रमुख केन्द्र बन गया। मीरां जहाँ भी बैठतीं, वहीं भक्तजनों की भीड़ लग जाती; जहाँ जातीं, वहीं सब भक्तजन पहुँच जाते; जहाँ वे भजन गातीं, वहीं भक्तजन खंजड़ी बजाने और नाचने लगते। समस्त द्वारिका मीरांमय बन गयी। इस प्रकार तीन वर्ष बीत गए।

राणा उदयसिंह की प्रबल इच्छा थी कि मीरां वापस चित्तौड़ आ जाए और तब वे उदयपुर नाम से नया नगर बसाएं और वहाँ एक विशाल मन्दिर बनवाएं, जहाँ मीरांबाई रहे और भजन- कीर्त्तन करके उसे धर्म केन्द्र बनाए। उधर राव जयमल की भी उत्कट अभिलाषा थी कि मीरांबाई मेड़ते आकर उनके पितामह राव दूदाजी के चतुर्भुज मन्दिर को अपना आराधना का केन्द्र बनाए।

फलतः दोनों ने मीरांबाई को बुलाने के लिए फिर से ब्राह्मणों के साथ पालकी तथा कहार भिजवाए और सन्देश कहलवाया कि वे द्वारिका से चली आएं। उन्हें कोई कष्ट नहीं होगा, उनके लिए विशाल मन्दिर बनवा दिया जाएगा और साधू-संतों के आग-

मन की पूरी सुविधा रहेगी। राव जयमल ने ब्राह्मणों से कह दिया कि जब तक मीरांबाई

मेङते चलने को राजी न हो जाएं तब तक वे वहीं धरना दे कर बैठे रहें। राणा उदयसिंह ने भी अपने ब्राह्मणों को आज्ञा दी कि वे मीरांबाई को लेकर ही वापस लौटें।

दोनों ओर के ब्राह्मणों से यह सन्देश सुन कर मीरां ने कहा, "नहीं, अब नहीं। मैं तो अब प्रतिदिन गिरिधर गोपाल के आने की आहट सुन रही हैं। वे अब आने ही वाले हैं। अब में द्वारिका छोङ कर कहीं भी नहीं जा सकती।"

दोनों ओर के ब्राह्मण वहीं रहने लगे। वे अपने महाराणा के पास किस मुँह से वापस जाते। वे प्रतिदिन मीरां से आग्रह करते और जहाँ वे जातीं, उनके पीछे-पीछे जाते।

एक दिन मीरांबाई को श्री रणछोङ जी के मन्दिर में कीर्त्तन करने जाना था। वहाँ पहले ही से भक्तजनों की भीङ लगी हुई थी। मीरां के वहाँ पहुँचते ही सब उठ कर खङे हो गए और मीरांबाई तथा उसके प्रभु भगवान कृष्ण की जय-जयकार करने लगे। मीरां सदैव ही गिरिधर गोपाल की मूर्ति भी अपने साथ रखती थीं। वे सीधे मन्दिर में गईं और उन्होंने गिरिधर गोपाल की मूर्ति को श्री रणछोङ जी की मूति के निकट रख कर दोनों को सिर नवाया। समस्त भक्तगण शान्त हो गए। मीरां आँखें बन्द किए भजन गाने लगी :

हरि करिहो जन की भीर।

द्रोपदी की लाज राखी, तुम बढ़ायो चीर।।
भक्ति कारन रूप नरसिंह धरयो आप सरीर।
हिरनकस्यप मारि लीनों, घरयो नाहि न धीर।।
वूङतें गज ग्राह तास्यों कियो बाहिर नीर।
दास 'मीरा' लाल गिरधर दुख जहाँ तहँ पीर।।

ललिता इकतारा बजा रही थी, कुछ साधूगण खंजङी बजा रहे थे, कुछ भक्तजन मीरां के साथ-साथ गा रहे थे और कुछ मन्त्रमुग्ध हो आँखें बन्द किए भजन का रसपान कर रहे थे।

भजन समाप्त होने पर मीरां ने आँखें खोलीं । भक्त- जन बोल पङ, "बोलो गिरिधर गोपाल की जय !" मीरां की दृष्टि दूर मन्दिर के द्वार तक चली गई। उसने देखा, राव जयमल और राणा उदयसिंह के भेजे हुए ब्राह्मण प्रतिदिन की भाँति आज भी सबसे पीछे बैठे हुए हैं। मीरां का भजन सुन कर वे भगवान कृष्ण के प्रेम में विह्वल से हो गए हैं।

मीरां ने दूसरा भजन शुरू किया :

सजन सुधि ज्यौं जानें ज्यौं लीजे । तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजै ।।

दिवस न भूख, रैन नहिं निद्रा, यह तन पल पल छीजै । 'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, अब मिलि बिदुरनि नहीं कीजै ।।

गाते-गाते मीरां को लगा जैसे दूर से किसी के पगों की ध्वनि उनके निकट आती जा रही है। एक आहट-सी उन्हें सुनाई दी। उन्होंने चौंक कर आखें खोलीं तो देखा कि एक भक्त तल्लीन हो कर नाच रहा है और अन्य भक्तगण आंखें बन्द किए सिर हिलाते हुए गा रहे हैं- 'अब मिलि बिकुरनि मत कीजै' । वे बार-बार यही पंक्ति गाते जा रहे थे और भक्त नाचता जा रहा था।

मीरां ने फिर आंखें बन्द कर लीं। कुछ ही देर बाद नाचने बाला भक्त मूति के चरणों में गिर पङा और भक्तगणों ने भजन समाप्त कर दिया। मन्दिर के प्रांगण में शांन्ति छा गई ।

कुछ क्षणों तक इसी तरह स्तब्धता छाई रही। मीरां ने फिर आंखें खोल कर चारों ओर देखा, मानो कोई स्वप्न देख कर उठी हो। चारों ओर शान्ति देख कर उन्हें जैसे कुछ याद हो आया। उन्होंने तीसरा भजन आरम्भ कर दिया :

मैं सुनी हरि आवन की आवाज ।....

अभी वे दूसरी पंक्ति ही गा रही थीं कि उन्हें लगा जैसे पूरा मन्दिर धरती से ऊपर उठा जा रहा है। उन्होंने पलकें मूं'द लीं। भक्तजन तल्लीन होकर भजन गा रहे थे। मीरां को लगा जैसे उनकी आवाज भी धीरे-धीरे दूर होती जा रही है, धरती में हल्का- हल्का कम्पन आ रहा है और वे तथा सभी भक्तजन मन्दिर सहित ऊपर आकाश की ओर उठे जा रहे हैं। उन्होंने मूत्ति की चौकी के कोने पर सिर टेक दिया ।

कुछ ही क्षण बाद उन्हें लगा जैसे मूर्ति उसी प्रकार बांहें फैला कर उन्हें बुला गिरिधर गोपाल की रही है, जिस प्रकार वर्षों पहले स्वप्न में मेड़ते में बुलाया था, जब वे केवल सात वर्ष की बालिका थीं ।

उन्हें लगा कि वे अपने स्थान से उठ कर उस मूर्ति के बिल्कुल निकट चली गई हैं। भजन चल रहा था, ललिता इक- तारा बजा रही थी, कुछ भक्तजन नाच रहे थे, साधूगण चिमटा और खंजड़ी बजा रहे थे, परन्तु मीरां को कुछ भी नहीं सुनाई दे रहा था। वे इन सब से निलिप्त अपने गिरिधर गोपाल के चरणों के निकट लेट गईं। उन्होंने दोनों हाथ आगे बढ़ाकर गिरिधर गोपाल के चरणों को छू कर कहा, "प्रभो !"

"हां, मीरां !” उन्हें लगा जैसे मूति बोल उठी हो । उन्होंने भाव विह्वल होकर कहा, "मैं युग-युगों से आपकी प्रतीक्षा कर रही थी, प्रभो !"

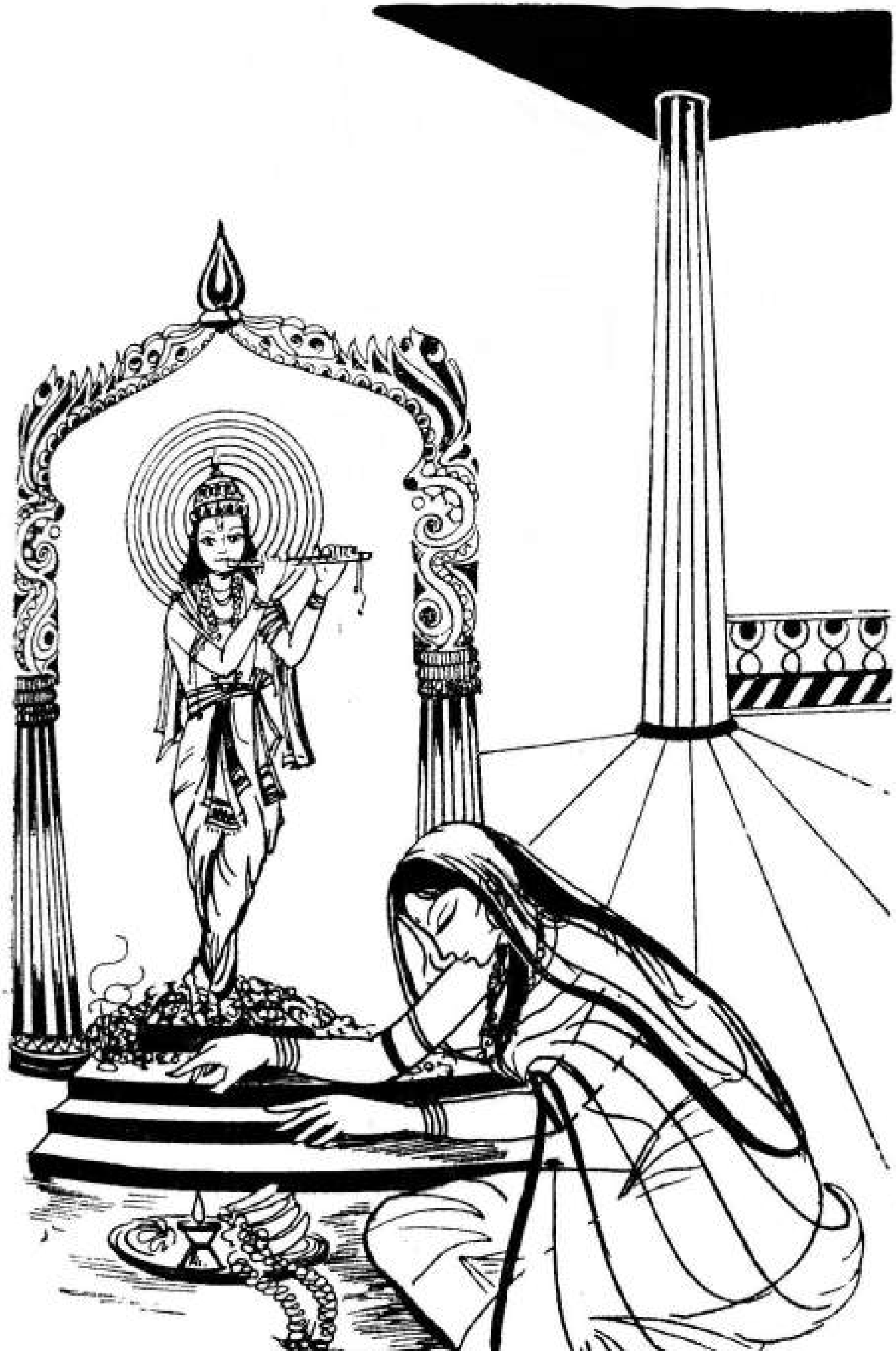

"हाँ मीरां," मूर्ति ने कहा।

"अब छोङ कर न जाना, मेरे स्वामी !" मीरां ने प्रेम विह्वल होकर कहा, "जहां जाओ मुझे ले चलना। मैं आपकी दासी हूं, चाकर हूं। युग-युगों से आपके प्रेम की प्यासी हूं !"

"मीरां ! मेरी मीरां !" उन्हें लगा जैसे मूर्ति ने अपने दोनों

हाथ आगे बढ़ा दिए हों। "मेरे प्रभो !" मीरां ने कहा और उन्हें लगा जैसे वे उसी तरह सशरीर उठकर मूति की बांहों में समाती जा रही हों।

"मुझे अपने साथ ले चलो, मेरे प्रभो ! अपने साथ ले चलो," मीरां ने आतुरता से कहा।

"चलो !" मूर्तिने कहा।

मीरां को लगा जैसे मूर्ति ने उन्हें अपनी बांहों में समेट लिया हो और वे धीरे धीरे ऊपर, और ऊपर, और अधिक ऊपर उठी जा रही हों।